

नई-नई कहानियाँ





नई-नई कहानियाँ

संपादन
मनोरमा जफ़ा

विद्यया ऽ मृतमश्नुते



एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

2103 – नई-नई कहानियाँ

ISBN 978-81-7450-942-0

प्रथम संस्करण

फरवरी 2000 भाद्रपद 1922

पुनर्मद्रण

जनवरी 2002 माघ 1933

अक्टूबर 2009 कार्तिक 1932

जुलाई 2012 आषाढ़ 1934

सितंबर 2019 भाद्रपद 1941

अगस्त 2020 श्रावण 1942

जून 2021 ज्येष्ठ 1943

अक्टूबर 2022 अश्विन 1944

सितंबर 2023 भाद्रपद 1945

PD 2T RPS

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण
परिषद्, 2000

₹ 65.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम.
पेपर पर मुद्रित।

सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी
दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशन प्रभाग में
प्रकाशित तथा निखिल ऑफ़सेट, 223, 127,
डी.एस.आई.डी.सी. कॉम्प्लेक्स, ओखला
इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली
110 020 द्वारा मुद्रित।

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की विक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैपस, श्री अरविंद मार्ग

नयी दिल्ली 110 016

फोन : 011-26562708

108, 100 फोर्ट रोड

हेली एक्सटेंशन, होस्टेकेरे

बनाशकरी III स्ट्रेज

बंगलूरु 560 085

फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन

डाकघर नवजीवन

अहमदाबाद 380 014

फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैपस

निकटः धनकल बस स्टॉप पनिहटी

कोलकाता 700 114

फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लेक्स, मालीगाँव

गुवाहाटी 781 021

फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

- | | | |
|-------------------------|---|-------------------|
| अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग | : | अनूप कुमार राजपूत |
| मुख्य उत्पादन अधिकारी | : | अरुण चितकारा |
| मुख्य व्यापार प्रबंधक | : | विपिन दिवान |
| मुख्य संपादक (प्रभारी) | : | विज्ञान सुतार |
| सहायक संपादक | : | दयाराम हरितश |
| सहायक उत्पादन अधिकारी | : | ओम प्रकाश |

आवरण

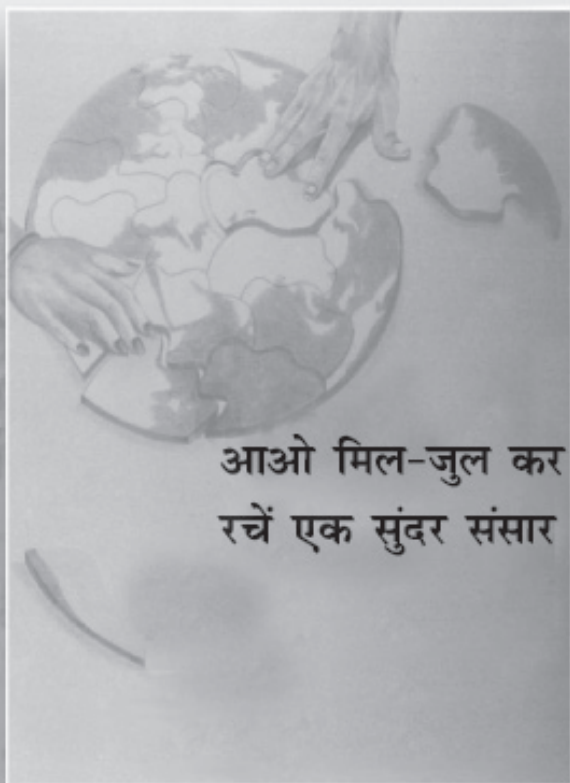
अमित श्रीवास्तव

चित्रांकन

एस. बालकृष्ण

अनुक्रम

1.	पहचान	शैल तिवारी	1
2.	मेरी माँ का बेटा	वैजयंती सावंत टोणपे	8
3.	आशा की किरण	गुलाम हैदर	16
4.	कबूतर	नवीन मेनन	24
5.	विकास	प्रतिभा नाथ	29
6.	फ़ोटो एलबम	नीलिमा सिन्हा	35
7.	मान बहादुर	वीरबाला रस्तोगी	42
8.	चिड़ियों की टोली	देवेन्द्र कुमार	47
9.	कत्थई रंग की कार	रश्मि स्वरूप जौहरी	56
10.	केन्तो	नीलिमा झा	64
11.	दादी	गिरिजा रानी अस्थाना	71
12.	अपने रंग	मधुलिका	78
13.	रुपये भी बोलते हैं	सौम्या दावे	86
14.	पत्र-मित्र	मनोरमा जफ़ा	92



आओ मिल-जुल कर
रचें एक सुंदर संसार

पहचान

शैल तिवारी

“अरे मुकुल, कैसे हो?”

अपना नाम अचानक अपरिचित स्वर में सुनते ही मैंने मुड़कर पीछे देखा। कुछ पहचाना सा चेहरा, गोल मुँह, साफ़ रंग, बड़ी-बड़ी आँखें, पर फिर भी ठीक से याद नहीं आया। मैं कुछ असमंजस में था कि वह लड़का एकदम पास आ गया। मेरे कंधे पर हाथ रखकर बोला— “मुझे पहचाना? मैं तो तुम्हें देखते ही पहचान गया था। मैं हूँ, अनुज—अनुज मेहता। हम पूना में स्कूल में साथ-साथ पढ़ते थे। याद आया?”

अचानक पुरानी यादों की तस्वीर एकदम साफ़ हो गई, किंतु ये बैसाखियाँ, जिनके सहारे वह खड़ा है, पहले तो न थीं। पर मैंने कुछ पूछना ठीक न समझा। इसके पहले कि मैं कुछ बोलता वह स्वयं मुस्कुराकर बोला, “दोस्त, दौड़ने के लिए दो पैर कम पड़ते थे, इसलिए दो और लगा लिए।”

यह उसने इतनी सहजता से कहा कि मैं उसकी ओर देखता रह गया। थोड़ी ही देर में पुरानी पहचान ताज़ा हो गई। हम दोनों देर तक पूना की बातें करते रहे। घर आकर खाने की मेज़ पर बैठते ही मैंने मम्मी को बताया, “मम्मी, आज मुझे स्कूल में अनुज मिला।”

“कौन अनुज?” मम्मी ने पूछा।

“वही, जो पूना में मेरे साथ पढ़ता था।” बातों ही बातों में मैंने उसकी बैसाखियों का जिक्र भी किया। मम्मी को एकदम धक्का-सा लगा। “इतना प्यारा, होशियार बच्चा! अरे यह कैसे हो गया उसके साथ?” माँ एकदम से दुखी हो गई। मैंने तुरंत विषय बदला।

“माँ! स्कूल में फुटबाल के नए कोच आ गए हैं। आज उन्होंने हम सबको नए तरीके से किक मारना सिखाया।” थोड़ी देर तक मैं उन्हें फुटबाल मैच के बारे में बताता रहा।

अनुज स्कूल में रोज़ ही मुझसे मिलता था। उसका सेक्शन ‘ए’ था और मेरा ‘सी’, पर क्लास एक ही थी। आधी छुट्टी में जब भी वह मुझे देखता, जल्दी-जल्दी मेरे पास आने की कोशिश करता। बैसाखियों की खटखट के कारण कई लड़के उसकी ओर देखने लगते, लेकिन अनुज किसी के व्यवहार व बातों पर ध्यान न देता। सभी के साथ हँस-हँस कर बातें करता था।

“अरे मुकुल, चलोगे नहीं? फुटबाल मैच के लिए अभ्यास करना है,” पीछे से टीम के एक साथी रवि की आवाज़ सुनाई दी।

“तुमने तो मुझे नहीं बताया कि तुम फुटबाल खेलते हो!” अनुज ने मुझसे कहा, “यह तो बहुत अच्छा है। चलो मैं भी मैदान में चलकर तुम्हारा खेल देखूँगा।” इतना कहते हुए अपने चेहरे पर आए पीड़ा के भाव को अनुज एक क्षण के लिए छिपा न सका! फिर बोला, “मैं कल ही टी.वी. पर रिनाल्डो का एक मैच देख रहा था। बहुत तेज भागता है। उसका गोल करना तो देखते ही बनता है!”

मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि उससे क्या कहूँ। फ़ील्ड पर साथ चलने के उसके सुझाव ने मेरी समस्या हल कर दी।

हमारा मैच एक घंटे तक चलता रहा। वह ज़ोर-शोर से हमारी टीम का हौसला बढ़ा रहा था। उसकी आवाज़ मेरे कानों में बराबर आ रही थी।

एक दिन मैंने उससे पूछा, “अनुज! तुम्हारे मम्मी-पापा कैसे हैं? कहाँ रह रहे हों आजकल तुम लोग?”

“दोनों ठीक हैं। हम लोग शांतिनगर में रहते हैं। मम्मी-पापा दोनों तुम्हें याद करते हैं। कभी हमारे घर आओ!” अनुज ने आग्रह किया।

“जरूर आऊँगा।” मैंने अनुज से कई बार यही वादा किया था पर किसी न किसी कारणवश मैं उसके घर न जा पाया, लेकिन इसके लिए अनुज ने कभी शिकायत भी नहीं की। जितनी देर भी वह मेरे साथ होता, खुश दिखाई देता। उसे छोड़कर मैं कई बार फुटबाल फ़ील्ड पर चला जाता, पर उसे कोई शिकायत नहीं थी।

मेरे साथ खेलने वाले सभी साथी अनुज से थोड़े खिंचे-खिंचे रहते थे। उन्हें लगता कि वह मेरे फुटबाल के अभ्यास में अड़चन बन गया है।

“अरे मुकुल, यह तूने किसका साथ पकड़ लिया है! वह खुद तो खेल नहीं सकता है और तेरा सारा टाइम भी ले लेता है।” एक दिन अनंत ने कह ही दिया।

“मेरे बचपन का दोस्त है।” मेरे मुँह से सिर्फ़ इतना निकला।

बात तो अनुज से करनी ही पड़ती थी, इसलिए फ़ील्ड पर जाने में अक्सर देर हो जाती थी। कभी-कभी तो मैं दूर से उसे देखकर अपना रास्ता बदलकर निकल जाता।

फुटबाल खेलना मुझे बहुत प्रिय था। कभी-कभी देर तक खेलने की वजह से इतना थक जाता कि शाम को गृह-कार्य करना भी कठिन हो जाता। खाना खाते ही सो जाता।

एक दिन मैं सुबह तैयार होकर नाश्ते के लिए बैठ रहा था। मुझे देखते ही पापा बोले, “मुकुल, आजकल तुम पढ़ाई में कम समय दे रहे हो। फुटबाल खेलना बहुत अच्छा है, पर साथ ही पढ़ाई में भी कमी नहीं आनी चाहिए। मुझे उम्मीद है कि इस बार भी तुम हमेशा की तरह अच्छे नम्बर ही लाओगे।”

“आप देख लीजिएगा मेरे नम्बर पहले की तरह ही आएँगे।” मैं सहजता से कह गया।

“तब चिंता की कोई बात नहीं है।” मुस्कुराते हुए पापा बोले और फिर दफ़्तर चले गए। मम्मी कुछ देर तक चुप रहीं। उन्हें भी पढ़ाई के प्रति मेरी उदासीनता का कुछ आभास मिल रहा था।

मंगलवार को घर आते ही मैंने उत्साहित होकर मम्मी से कहा, "मम्मी, आज तो मज़ा आ गया। फुटबाल मैच में मेरी टीम जीत गई। वार्षिक उत्सव में हम सभी को मैडल दिया जाएगा।"

मम्मी ने भी मुझे शाबाशी दी। इससे मेरी खुशी दोगुनी हो गई। अपनी जीत के उत्साह में मुझे ध्यान ही नहीं आया कि पिछले कई दिनों से अनुज दिखाई नहीं दिया था।

शुक्रवार को मैं क्लास से खेल के मैदान की ओर आ रहा था कि थोड़ी दूर से आवाज़ आई, "अरे मुकुल, बधाई! बड़ी खुशी हुई, तुम्हारी टीम जीत गई। मैं बीमार था इसलिए आज स्कूल आने के बाद ही पता चला।"

मैंने मुड़कर पीछे देखा। अनुज की चाल आज कुछ धीमी थी और मुँह भी उतरा हुआ था।

"धन्यवाद! अब तो तबीयत ठीक है न?" और उसके उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही मैं जल्दी से अपने साथियों के साथ चल दिया। पीछे मुड़कर देखा भी नहीं कि वह हमारे पीछे आ रहा है या अपनी क्लास की ओर वापस चला गया है।

मेरे साथ खेलने वाले साथी अनुज को 'चिपकू' बुलाते थे। मुझे अच्छा तो नहीं लगता था पर सुनकर मैं चुप हो जाता था। फुटबाल खेलने के लालच में मैं अक्सर अनुज से आँखें दूरा जाता था। कभी-कभी उसकी आवाज़ भी अनसुनी कर देता था। पर मेरी उपेक्षा से भी अनुज के व्यवहार में कोई बदलाव नहीं आया था। जब भी मिलता प्यार से बातें करता।

परीक्षा के दिन पास आ रहे थे। फ़ील्ड पर अब भीड़ कम आने लगी थी। मेरा खेल का लालच छूटता ही न था। अनुज अब थोड़ा कम दिखने लगा था और मैंने भी जानने की कोशिश नहीं की थी कि ऐसा क्यों था।

पन्द्रह दिन बाद, सोमवार की सुबह स्कूल में हलचल थी। आखिरी मासिक परीक्षाफल आना था। सुबह असेम्बली के बाद

प्रिंसिपल साहब बोले—“मुझे आज तुम सबको यह बताते हुए बहुत गर्व का अनुभव हो रहा है कि इसी साल स्कूल में आए एक लड़के ने सारे विषयों में सबसे ज्यादा नम्बर प्राप्त किए हैं। मैं इस लड़के से आप सबको मिलवाता हूँ। इसका नाम है—अनुज मेहता! शाबाश बेटा!”

अनुज बैसाखियों के सहारे चलता हुआ सामने आया। मुस्कुराकर सबको नमस्कार किया और वापस चला गया। मैं भी अपनी क्लास में आ गया। थोड़ी ही देर में क्लास टीचर ने आकर सबका परीक्षाफल सुनाया। इस बार मेरे नम्बर अच्छे न थे। गणित में तो बहुत कम थे। मेरे पैरों के नीचे से जमीन ही खिसक गई। तुरंत ध्यान आया कि अब पापा को क्या जवाब दूँगा। आज के परीक्षाफल ने मुझे चौंका दिया था। मैं क्लास में सिर झुकाए बैठा था। क्लास के सारे साथी कब बाहर चले गए, मुझे पता न चला। तभी किसी ने पीछे से मेरे कंधे पर हाथ रखा। मुड़कर देखा अनुज था।

“अरे मुकुल यहाँ अकेले क्यों बैठे हो? मैं तो तुम्हें सब तरफ ढूँढ़ आया हूँ।”

मैंने दबी आवाज में कहा, “अनुज, मेरे नम्बर बहुत खराब आए हैं। मैं पापा-मम्मी के सामने जाने से डर रहा हूँ। क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आ रहा है।”

“अरे दोस्त, कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है। पापा से प्यार से ‘सॉरी’ कह देना और आगे अच्छे नम्बर लाने का वायदा कर देना। मान जाएँगे।” अनुज बोला।

“पर अब तो समय भी नहीं है, मैं अच्छा करूँगा कैसे?” मैंने कहा।

“तुम कहो तो, मैं तुम्हारी कुछ मदद करूँ?”

“कैसे?” मैंने एकदम पूछा।

“अभी वार्षिक परीक्षा में एक महीना बाकी है, हम दोनों मिलकर कोशिश कर सकते हैं।” अनुज ने कहा।



मुझे आशा की एक किरण दिखाई दी। "अनुज, क्या यह संभव है?" मैंने पूछा।

"क्यों नहीं! हम दोनों खेल के समय में बैठकर गणित का अभ्यास करेंगे।"

शाम को घर आकर मैंने माँ को सब सच-सच बता दिया। अनुज द्वारा दिए गए आश्वासन की बात भी उन्हें बताई।

माँ बोली—“अनुज बड़ा अच्छा लड़का है। यदि वह ऐसा कह रहा है तो उसके साथ अवश्य पढ़ो। स्कूल से घर आकर भी अभ्यास करो। अभी तो पूरे एक महीने का समय है। खूब मेहनत करो।

मैं और अनुज योजना के अनुसार पढ़ते रहे। मार्च का महीना कैसे निकल गया मुझे पता ही नहीं चला। मैं और अनुज साथ-साथ ऐसे पढ़ते थे जैसे दोनों एक गति से दौड़ रहे हों।

अप्रैल का दूसरा सप्ताह! आज परीक्षाफल आना था। उस दिन मैं अंदर से बेहद बेचैन था।

“परेशान क्यों हो मुकुल! सब अच्छा ही होगा,” अनुज ने मुझे धीरज बंधाया। फिर हँसकर बोला “अभी तो एक महीने की फुटबाल की पिछड़ी हुई प्रैक्टिस भी पूरी करनी है।”

हम अपनी-अपनी क्लास में चले गए। टीचर ने परीक्षाफल सुनाया। गणित में मेरे बहुत अच्छे नम्बर थे। मैं कार्ड लेकर एकदम अनुज के सेक्शन की ओर भागा। अनुज भी मेरी क्लास की ओर ही आ रहा था।

“मेरे भी बहुत अच्छे नम्बर हैं मुकुल, हमने कर दिखाया!” इतना कहकर अनुज मेरे गले से लिपट गया। कब उसकी एक बैसाखी ज़मीन पर गिर गई, पता ही न चला। हम प्यार से गले मिल रहे थे, जैसे अब कभी अलग नहीं होंगे।



मेरी माँ का बेटा

वैजयंती सावंत टोणपे

तेईस—हाँ, मैं तेईस फुल्के बना चुकी थी और अभी तक माँ का ध्यान मेरी तरफ़ नहीं गया था। सिकी हुई रोटियों की इतनी तेज़ सुगन्ध के बावजूद...तेईस फुल्के। हाँ, तेईस तो बनाने ही पड़ेंगे। दोपहर में किसी ने भी खाना नहीं खाया था। बहुत थक गई थी मैं, पर मुझे मालूम था आज पचास क्यों, सौ रोटियाँ भी बनानी पड़ें तो भी नहीं हटूँगी मैं। बस माँ का व्यवहार समझ में नहीं आ रहा था। ..दुख तो हम सबको था। इतना बड़ा दुख...पर ऐसे समय में माँ—हमारी माँ यों गुमसुम बैठी रहे। और मुझ तेरह बरस की लड़की से यह उम्मीद रखे कि मैं इस घर के साथ-साथ उस घर का भी ध्यान रखूँ!

छी: छी:, ऐसा सोचते हुए भी शर्म आनी चाहिए मुझे। विशाल... विशाल... और मेरी आँखें फिर आँसुओं से भर गई। एकाएक आँच पर जलती रोटी की कड़वी गंध ने जैसे मुझे चौंका कर सावधान कर दिया। झट तबे पर से जली रोटी उतारकर दूसरा फुल्का डाल दिया।

अगर सविता को पता चल जाता कि मैं यहाँ अकेली काम कर रही हूँ तो... वह आ जाती। शोक उसके घर में मनाया जा रहा था, लेकिन दुख तो हम सबका था बराबर। अब मेरी माँ को ही देखो न—'बेटा', 'पड़ोसिन' का और दुख में डूबी, सुन्न बैठी है, जब से खबर आई है तभी से।

हमारी माँ, हम सबका कितना ध्यान रखती है। हम दस भाई-बहनों की माँ, इस पूरे 'विलेज' में एक आदर्श माँ कहलाती थी। हमारी

माँ ने बार-बार हर नए बच्चे को कलेजे से लगाकर अपना परिवार बनाया था। और आज वही 'माँ' एक दूसरी 'माँ' के बेटे की मृत्यु पर अपने बच्चों को भुलाकर बुत बनी बैठी है!

विशाल भैया की मौत का सदमा हम सभी को बराबर था। पर हमारी माँ का दुख में यों टूट जाना मेरी समझ में नहीं आ रहा था। शायद हमारे 'विलेज' की रिश्तेदारी थी ही ऐसी।

आम भाषा में हम सब अनाथालय में रहने वाले बच्चे थे। हममें से कई बच्चे ऐसे थे जिन्हें अपने असली माँ-बाप के बारे में कुछ पता न था। उन्हीं में से एक थे कारगिल के हीरो, परमवीर विशाल। हममें से कई ऐसे थे जिनका पालन-पोषण करने में असमर्थ थे उनके माँ-बाप, इसीलिए वे बच्चों को इस 'विलेज' में छोड़ गए थे। हमारा 'विलेज' देश-विदेश में मशहूर था। इसे एक जर्मन अनाथ के बताए तरीके पर बनाया गया था। यहाँ दस 'हट्स' या 'घरों' में रहती थी एक माँ अपने दस बच्चों के साथ। ऐसे एक सौ दस बच्चों का 'विलेज' था हमारा। किसी भी समय एक माँ के पास दस बच्चों से ज्यादा नहीं हो सकते थे। जब 'बच्चा' बड़ा होकर दिल्ली से बाहर के किसी कॉलिज में पढ़ने जाए या नौकरी करने लगे, तभी वह अपनी 'माँ' को छोड़कर जा सकता था।

हमारे ऐसे कई 'बड़े' भाई-बहन थे जो अब 'बाहर' की दुनिया में बस गए थे। उनके अपने-अपने परिवार हो गए थे। अपनी व्यस्त जिंदगी थी। अपने पति या पत्नी के साथ माँ से मिलने आते हैं उनके ये बेटे और बेटियाँ। यही लोग हमारी प्रेरणा थे। इन्हें देखकर ही तो हमें भरोसा होता था कि हम बच्चे समाज द्वारा फेंके गए सड़े हुए टमाटर नहीं, प्यार भरा संसार बनाने वालों की इमारतों की नींव हैं।

हम बच्चे अपनी उम्र के हिसाब से ज्यादा समझदार समझे जाते हैं। हमारे 'विलेज' में 'माँ' को अपना 'घर' चलाने के लिए आवश्यक खर्च व कौन-कौन सी चीज़ कितनी चाहिए इसे तय करना, 'घर' के नए सदस्य के प्रति उसकी माँ तथा भाई-बहनों का व्यवहार कैसा हो, नन्हे बच्चों को परिवार का हिस्सा कैसे बनाया जाए—इसे तो मुझ

जैसी तेरह वर्ष की लड़की भी खूब समझती है। अब अपने परिवार की 'दीदी' मैं हूँ। यह सब समझ हमें मिली कहाँ से? माँ से ही न! तो फिर आज माँ का ध्यान मेरी ओर क्यों नहीं जा रहा है !

"मीता दीदी...मीता दीदी...भूत लदी है।"

"मुझे भी भूत..."

"बाला, मुन्ना...अरे, छोड़ो मुझे। रोटी जल जाएगी...", मैं चीख पड़ी। परिवार के सबसे छोटे सदस्यों के नन्हे-नन्हे हाथ अपने घुटनों पर से हटाते हुए मैंने कहा, " अभी देती हूँ खाना..."

"अम्मा, अम्मा मीता दीदी... खाना नहीं देती है," और दोनों भागकर माँ से लिपट गए। माँ कुछ कहती, इससे पहले ही मैंने गैस बन्द कर दी और दोनों को माँ से दूर करते हुए कहा, "माँ, खाना तैयार है। अगर आप रत्ना मौसी के यहाँ ले जाओ तो मैं यहाँ सबको खाना खिला दूँगी।" मैं झुककर उन दोनों को माँ की गोद से दूर करने में लगी थी तभी माँ के हाथ का प्यार भरा स्पर्श मेरे सिर पर आकर ठहर गया। हाथ फेरती हुई वह फुसफुसाई, "मेरी रानी..."

सब दुख भुलाकर मेरे शरीर का रोम-रोम नाच उठा। मैंने झट थाली परोसी और अपने प्यारे भाई-बहनों को खाना खिलाने लगी। तभी माँ उठकर बड़े-बड़े डिब्बों में खाना भरने लगी।

"गुड्डू...पारुल...मेरी...जसबीरा, मैं खाना लेकर वहाँ जा रही हूँ। तुम सब खाना खाकर अपनी-अपनी थाली, कटोरी साफ़ करके रख देना। और हाँ, अपनी मीता दीदी को परेशान मत करना। बहुत थक गई होगी।" कहकर माँ ने खाने के डिब्बे उठाए और चली गई। बच्चे एक-एक करके अन्दर वाले कमरों से बाहर निकल आए। पर मेरी आँखों में सिर्फ़ माँ का चेहरा घूमता रहा।

"दीदी... तुम भी खा लो न," मेरी ने मुझे हिलाते हुए कहा। मैं चौंक पड़ी। सब खा चुके थे। अपने जूठे बरतन धो-पोंछकर रखने जा रहे थे। "पर माँ तो अभी वापस नहीं आई, मेरी," मैंने कहा।

“माँ रत्ना मौसी को खिलाए बिना कैसे आएगी, दीदी ? ...और रत्ना मौसी भी तो तभी खाएगी न जब माँ खाएगी, तुम खा लो दीदी।” मेरी ने एक प्लेट में एक फुल्का और थोड़ी सब्जी मेरे सामने रख दी। पर मैं खाती कैसे? बार-बार दोपहर का वह दृश्य मेरी आँखों के सामने तैर जाता। वह इक्कीस तोपों की सलामी... वे उल्टी की हुई राइफलें ...और वे आग की लपटें... और उससे पहले...जब एक लकड़ी के ताबूत में बंद विशाल भैया की देह को सिर्फ चन्द घंटों के लिए उसके ‘घर’ में लाया गया था। रत्ना मौसी की चीख... माँ का घुटनों पर गिर पड़ना... क्या था वह सब? क्या विशाल के लिए प्यार? उसकी कुरबानी पर नाज़? या फिर...एक गहरा आघात? ताबूत खोला नहीं गया... सारा देश...सारी दुनिया जान चुकी है... कि विशाल और उसके साथियों के साथ दुश्मनों ने कैसा बरताव किया था।

रत्ना मौसी के ‘घर’ में हम लोगों का आक्रोश देखते हुए जनरल आफिसर कमांडिंग करनल जोग अपने आँसू खुद भी न रोक पाए थे। उन्होंने माँ की ओर देखकर हम सबसे कहा था... “बहादुर बच्चे रोते नहीं। देश पर... अपनी माँ पर कुरबान हो जाते हैं।” हाँ तभी से माँ गुमसुम हो गई थी। क्या था विशाल और माँ का राज ?

जब तक माँ वापस आई मेरी और जसबीरा भी सोने चले गए थे। मैं भी रसोई समेट चुकी थी। माँ के अन्दर आते ही मैंने पूछा “माँ, तुमने खाना खाया?”

माँ ने भी साथ-साथ मुझसे पूछा “मीता...बेटी, तूने खाना खाया?”

“हाँ...माँ...”

“तो फिर ज़िद न कर मेरी लाड़ली...मेरे गले से कुछ नहीं उतरेगा। जैसे-तैसे रत्ना और उसके बच्चों को खिला कर आई हूँ... बाकी घरों से भी कुछ भेजा था... देखा नहीं जाता रत्ना का दुख...बहुत चाहती थी... विशाल को...”

हम लोग रसोई में ही थे। माँ वहाँ से लाए हुए बरतन समेट रही थी, तब तक मैंने थोड़ा दूध गरम किया और कप में डाल कर माँ को दिया।

माँ मना करने ही वाली थी पर मैंने टीचर की तरह एक उँगली उठाते हुए कहा, "चुपचाप...पी जाओ बस..."



माँ ने उस शाम फिर एक बार मुझे पुचकारते हुए कहा, "मेरी लाड़ली।"

"मैं लाड़ली...और विशाल?"

"विशाल?" दूध का घूँट भरती हुई माँ ने फिर पूछा... "विशाल का क्या, मीता मैं समझी नहीं?"

"क्या था विशाल तुम्हारा?"

"क्या था मेरा? क्या मतलब है तेरा? मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है। आज के बाद कोई भी इस दुनिया में पूछ सकता है...क्या था, विशाल तुम्हारा...? अरे, सारा देश उसके गुण गा रहा है..."

"तो तुम मानती हो माँ..."

"क्या?"

"विशाल तुम्हारा बेटा था न...सच बोलो...विशाल को तुमने जन्म दिया था न...बोलो माँ...आज बोल दो सच। मैंने देखा है तुम्हें सुबह से ...रत्ना मौसी ने तो रो-धोकर अपना दुख जता दिया... पर तुमने अपने आप को देखा है? क्या छिपा रही हो अपने अन्दर?"

"मीता! पागल हो गई है क्या?" माँ ने कप मेज़ पर रखा और झट से मुझे बाँहों में जकड़कर दबी आवाज़ में सिसकियाँ भरते हुए बोली, "काश, वह मेरा बेटा होता! पर अपने बेटे से ज्यादा प्यार और विश्वास दिया था मेरे विशाल ने मुझे। हमारी अपनी किसी की भी कोई संतान नहीं है...और विशाल तो रत्ना का बेटा है...ठीक वैसे ही जैसे तुम मेरी लाड़ली हो...प्यार का रिश्ता है...हम सबका।"

अब मैं भी सिसक रही थी...फिर भी मैं सब कुछ जानना चाहती थी, "तुम्हारा विशाल के साथ कुछ अनोखा ही रिश्ता था माँ...क्या था वह कि तुम आज हम सब को भूल गई थीं माँ!"

"क्या यह अपराध था, मीता? क्या मुझे दुख महसूस करने का हक नहीं...? मैं अब समझी हूँ...तुम क्या पूछना चाहती हो...हाँ...विशाल

मेरा बेटा था...है...हमेशा रहेगा...पता है क्यों? विशाल जब 'विलेज' में आया तो प्यार का भूखा था। रत्ना के घर में जगह खाली थी! सो वह उसका बेटा बन गया... अपनी रत्ना मौसी को तो तुम जानती ही हो। कितने होनहार निकले उसके सारे बच्चे... और विशाल...रत्ना को खुश देखने के लिए एक क्यों, न जाने कितनी बार अपनी जान बचपन में कुरबान कर चुका है..."

"पर माँ...तुमने विशाल को क्या दिया ? विशाल तुम्हें 'मौसी' के नाते से ज़्यादा मानता था!"

"विशाल शहीद हुआ है, अमर हो गया है विशाल। जब वह यहाँ आया था तो सात साल का था। उसके माँ-बाप कौन थे, वह नहीं जानता था। और यहाँ के बच्चों से घुल-मिल जाने के बाद उसे कभी उसका गम भी महसूस नहीं हुआ...रत्ना को 'माँ' मानकर वह बहुत खुश था। जब वह दस साल का हो गया था, तब...दो साल से मेरे पास हिन्दी पढ़ने के लिए आता था...क्लास में फ़्रस्ट आना वह बहुत ज़रूरी समझता था। पर कभी-कभी उसे पढ़ाई पर ध्यान देना कठिन लगता था। उस समय वह कक्षा पाँच में था, जब गणतन्त्र दिवस के अवसर पर 'मेरा देश' विषय पर हिन्दी में उसे निबन्ध लिखना था। मैंने न जाने कितना समझाया पर उसने कुछ लिखा ही नहीं...मुझे भी गुस्सा आ गया...खींचकर एक चोट मारा। रो पड़ा विशाल, और जोर-जोर से चीख-चीखकर कहने लगा—'मेरा देश—कौन-सा है मेरा देश? क्या तुम जानती हो? नहीं न? कैसे कह सकती हो कि भारत मेरा देश है? पता है, जिस गाँव से मैं यहाँ लाया गया...वहाँ सब मुझसे पूछते थे...तू कौन है? हमारे देश में क्यों भटक कर आ गया है? एक दिन मैंने ढाबे वाले से पूछा—ऐसा क्यों कहते हैं सब? उसने कहा था—तू शायद सीमा पार से भटकता हुआ आया था। शायद इसीलिए कहते हैं।" लंबी साँस लेकर माँ चुप हो गई।

"माँ..."

"हाँ मीता...बता तो रही हूँ...तब तो उसकी बातों पर मुझे भी तरस नहीं आया। वह किसी दुविधा में अपनी नन्ही जिन्दगी जीते हुए

बड़ा हुआ था। इसका मैंने ज़रा भी ध्यान नहीं किया। मुझमें था सिर्फ गुस्सा... क्रोध कि जब हम माताएँ अपने दुख-गम, परेशानियाँ भुलाकर यहाँ के बच्चों को अपनाने में, उन्हें प्यार देने में लगी हुई हैं तो इस लड़के की यह मजाल कि ऐसा प्रश्न पूछे!" माँ भावावेश में बोलती जा रही थी।

"'बेशरम...' मैंने उसे डाँटा था कि तू पूछ भी कैसे सकता है कि तेरा देश कौन-सा है...क्या तुझे अब भी कोई संदेह है? रत्ना को माँ कहता है न?"

"हाँ...वह तेरी माँ है...और कोई उनके बारे में कुछ नहीं कहेगा..."

"बेवकूफ़! जब रत्ना तेरी माँ है... तो उसका देश ही तेरा देश हुआ कि नहीं?"

"अब मैं समझा, माँ....मौसी...भारती मौसी....अगर मैं फ़ौज में भरती हो जाऊँ.... मैं अपने देश के लिए जान दे पाऊँगा न?"

"क्यों नहीं।"

"अरे पगली!" माँ ने मेरी तरफ़ ध्यान से देखा, "अब जाकर मेरी समझ में आया कि तुम्हारे अन्दर कैसी आँधी उठ रही है ? मैंने छोटे से विशाल को अपने सीने से लगाया था और उसका दिल रखने के लिए एक तिरंगा झंडा देकर कहा था... 'ले बेटा यह ले... इस भारती मौसी ने तुझे तेरा देश संभाल कर रखने के लिए दिया...बोल, 'भारत माँ की जय...'"

और एक बार मेरे मुँह से भी निकल गया "भारत माँ की जय..."

"अब समझी मीता...कि विशाल मेरा कौन था?"

मेरे मुँह से निकल ही तो गया "माँ...तुम महान हो...तुम माँ हो विशाल की भी। उसने यह साबित कर दिखाया है कि तुमने उसे जो सौंपा उसकी उसने अपनी जान से ज़्यादा हिफाज़त की। विशाल मेरी माँ का ही बेटा है...मेरी भारत माँ का-धरती माँ का..." □□

आशा की किरण

गुलाम हैदर

अखबार बेचकर जब माजिद लौटा तो घर पर अपनी अम्मी को न पाकर उसे कुछ संतोष ही हुआ। ताला खोला और अन्दर आकर तुरन्त दरवाज़ा बन्द कर लिया। बत्ती जलाई और पतलून की जेब से एक फूला हुआ बटुआ निकाला। उसका पूरा शरीर और हाथ-पैर इतने काँप रहे थे कि वह खड़ा न रह सका। बटुए में एक बार झाँकते ही वह बड़बड़ाया—“बाप रे! इतने बड़े-बड़े नोट!”

दरवाज़े पर खटखटाहट हुई। वह जल्दी से उठा, दरी के नीचे बटुआ छिपाया और अम्मी के लिए दरवाज़ा खोल दिया। उस दिन वह रमेश के यहाँ पढ़ने भी नहीं गया।

रात में माजिद मुश्किल से दो घंटे सो पाया। एक बार अम्मी ने पूछा भी, “क्या बात है माजिद? आज तू सो क्यों नहीं रहा है? जाड़ा लग रहा है क्या?”

“नहीं अम्मी, कोई बात नहीं, तुम सो जाओ।”

रात भर माजिद के दिल और दिमाग में एक लड़ाई चलती रही। वह सोच रहा था—‘अम्मी बीमार हैं, महीनों से दुकान बन्द पड़ी है। किराए के सौ रुपए भी बेकार जा रहे हैं। इन पैसों में कितने कष्ट दूर हो सकते हैं।’ दूसरी ओर दिल कहता था—‘माजिद यह पैसा तेरा नहीं है। इसे खर्च करने का तुझे कोई अधिकार नहीं है।’

‘क्यों नहीं है?’ उसने सोचा, ‘अम्मी कितनी कमज़ोर हो गई हैं, फिर भी काम करने जाती हैं। पैसे हैं तो कठिनाइयों को हल क्यों न किया जाए?’

‘नहीं माजिद!’ दिल ने फिर याद दिलाया, ‘दूसरे के पैसे से अपनी कठिनाइयों का समाधान! तूने तो अपने पैगम्बर और अनेक महापुरुषों की कहानियाँ सुनी हैं। वे सब तो परिश्रम की बात कहते हैं।’

‘पर मैंने चोरी तो नहीं की!’ उसने अपने को समझाने की कोशिश की। मन से आवाज़ सी आई, ‘कुछ भी हो, तू जानता तो है यह किसका पैसा है!’

अगली सुबह, अम्मी के काम पर जाने के बाद माजिद ने उस बटुए को दरी के ऊपर से ही छूकर देखा—एक बार रुपए गिनने का भी मन किया, परन्तु वह तेज़ी से बाहर निकल आया।

और दिनों की तरह आज वह गिल्ली-डंडा खेलने भी नहीं गया। इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहा। दिन में जब उस चौराहे पर पहुँचा जहाँ वह और रमेश अखबार बेचते थे तो देखते ही रमेश ने पूछा, “अरे ओ मजदे, तुझे क्या हुआ? क्या अम्मी से पिट कर आया है?”

“नहीं!” माजिद ने मुस्कुराने का प्रयत्न किया।

फिर समाचार-पत्रों वाला आया, उसने दोनों को गिनकर अखबार दिए, और फिर दोनों चौराहे की हरी-लाल बत्तियों के आसपास कारों, बसों, स्कूटरों के चारों ओर अखबारों की हाँक लगाने लगे।

एकाएक रमेश ने देखा कि हरी बत्ती का ध्यान किए बिना माजिद एक नीली कार के पीछे दौड़ा जा रहा है। ज़ोर-ज़ोर से कुछ बोल रहा है। यदि वह तुरंत ही माजिद का हाथ पकड़कर पटरी पर खींच न लेता तो माजिद अवश्य उस पिछली वाली कार के नीचे आ जाता। “पागल हो गया है क्या?” रमेश चिल्लाया।

“डी.एल.सी. 1545! हाँ वही थी—1545”, माजिद बुदबुदाया।

रमेश घबरा गया, “क्या रट लगा रखी है ? — ‘डी.एल.सी. 1545!’ बैठ जा।” उसने माजिद को ज़बरदस्ती पटरी पर बैठाते हुए कहा। थोड़ी देर चुप रहकर उसने फिर कहा, “तेरी तबीयत ठीक नहीं लगती है आज। ला, अपने अखबार दे, सब बेच दूँगा मैं।” माजिद से

अखबारों का बंडल झपटकर, वह फिर से गाड़ियों के जमघट में जा पहुँचा।

आठ बजे तक रमेश ने माजिद को अपनी जगह से उठने नहीं दिया। अखबार वाला आया तो उसी ने दोनों का हिसाब किया और फिर माजिद के रोकते-रोकते भी उसकी जेब से सारे पैसे निकाले, अपने सब पैसे उसमें मिला दिए और उनमें से पचास पैसे अलग कर के शेष आधे गिनकर फिर माजिद की जेब में डाल दिए। फिर उसका हाथ थाम पटरी के किनारे पर बैठे पापड़ वाले के पास ले गया। हर दिन की तरह दो पापड़ लिए, उन पर अधिक मसाला डलवाया और एक पत्थर पर बैठकर खाना आरम्भ कर दिया। रमेश ने फिर पूछा, "हाँ, अब बता क्या बात है?"

"नहीं, कुछ नहीं!"

"देख मजदे! बात तो अवश्य है कुछ! तू पागल मत बना मुझे।" उसने माजिद के कन्धे पर जोर से हाथ मारते हुए कहा। "तू उस गाड़ी की चपेट में आते-आते बच गया। शुक्र कर भगवान का।"

"नहीं, कोई बात नहीं," माजिद ने रमेश से बिना आँखें मिलाए कहा।

"अच्छा, तो मत बता! मगर फिर कल से न मैं तेरे साथ अखबार बेचूँगा, न तुझसे बात करूँगा!" रमेश खड़ा हो गया।

"नहीं नहीं!" लगता था माजिद रोने वाला है। "बताऊँगा, बताऊँगा पर आज नहीं, कल।"

"चल ठीक है! पर वादा कर, पक्का वादा।"

"पक्का वादा!"

"अच्छा, तू आज भी पढ़ने नहीं आएगा?"

"नहीं!" माजिद ने धीरे से कहा।

दोनों उठे और धीमी गति से अपने-अपने घरों की ओर बढ़ गए।

माजिद और रमेश पुराने और पक्के मित्र थे। अभी कुछ महीने पूर्व तक एक साथ छठी कक्षा में पढ़ते थे। परन्तु अपने पिता की मृत्यु के पश्चात माजिद स्कूल छोड़कर अपनी दुकान पर बैठने लगा।

घर लौटते हुए माजिद ने एक होटल से रोटियाँ लीं। बाद में जब वह अम्मी के साथ भोजन कर रहा था तो उसने हिम्मत जुटाकर बात आरम्भ की—“अम्मी, यदि कहीं से कुछ पैसे मिल जाएँ...तो तुम्हारी दवा लाकर सबसे पहले मैं दुकान का सामान लाऊँगा।”

“हाँ बेटे, चिन्ता न कर। अब मैं ठीक हो रही हूँ। दो-चार दिन में ही मैं कहीं से पैसे जुटा लूँगी।”

“और अगर हमें पैसे तुरन्त मिल जाएँ तो?” माजिद ने डरते-डरते कनखियों से अम्मी की ओर देखा।

“तुरन्त! तुरन्त से क्या मतलब!” अम्मी चौंक पड़ी।

माजिद भी अब धैर्य न रख सका। उसने रुक-रुककर कहना आरम्भ किया, “कल शाम अखबार बेचते हुए...”

“हाँ, हाँ! ...जल्दी बता!” अम्मी ने बेचैनी से कहा।

“मु...मुझे वह...एक बटुआ...मिला था।”

“कैसा बटुआ? किसका बटुआ? कहाँ है वह?” अम्मी ने काँपती आवाज़ में प्रश्नों की बौछार-सी कर दी। “तूने जेब काटना, पर्स छीनना तो शुरू नहीं कर दिया?” अम्मी ने खाना बीच में ही छोड़ दिया।

“नहीं अम्मी, नहीं...तुम्हारी कसम, मैंने जेब नहीं काटी!” माजिद की आवाज़ भर्रा गई।

“कहाँ है बटुआ? अब तक क्यों नहीं बताया था तूने मुझे?” अम्मी की आवाज़ कठोर थी।

माजिद उठा, दरी के नीचे से टटोलकर बटुआ निकाला और काँपते हाथों से अम्मी की ओर बढ़ा दिया। परन्तु इसके साथ ही उसके धीरज का बाँध भी टूट गया।

अम्मी ने दरवाज़ा बन्द किया और फिर बैठते हुए पूछा, "हाँ, अब बता यह बटुआ तुझे कहाँ और कैसे मिला? सच-सच बता।"

"कल शाम...जब मैंने एक नीले रंग की कार वाले साहब को अख़बार दिया...तो पिछली सीट पर बैठे एक छोटे से बच्चे ने यह बटुआ खुले शीशे से बाहर फेंक दिया," माजिद ने बताया। "मैं तो उसी समय कार के पीछे चिल्लाता हुआ दौड़ा भी, पर गाड़ी तेज़ी से आगे निकल गई।"

अम्मी सिर पकड़ कर बैठ गई और माजिद सिसकियों के बीच रुंधे गले से बोलता रहा, "तुम्हारी कसम अम्मी... मैं तो आज भी मरते-मरते बचा हूँ...यदि रमेश मुझे पीछे खींच न लेता तो मैं उसी नीली गाड़ी से पीछे वाली गाड़ी के नीचे ज़रूर आ गया होता...मुझे तो उस का नम्बर भी याद है...डी..."

"हूँ!" थोड़ी देर चुप रहकर अम्मी ने पूछा, "तूने बटुए के अन्दर देखा?"

"हाँ अम्मी, बस एक बार झाँककर देखा था! इसमें बहुत से बड़े-बड़े नोट भरे हुए हैं।"

"फिर तूने क्या सोचा?" अम्मी ने पूछा।

"अम्मी, मैं तो उसी समय से सोच रहा हूँ, पर अब मैंने तय कर लिया है, मैं यह बटुआ उन्हें अवश्य लौटा दूँगा।"

"शाबाश!" अम्मी ने माजिद को सीने से लगा लिया। "शाबाश बेटे!" अम्मी की आँखों में आँसू भर आए। थोड़ी देर बाद वह नोटों को गिन रही थी "...नौ हजार...सात...सौ...और तीस!"

माजिद ने सुना तो उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ।

"तूने किसी को बताया तो नहीं?"

"नहीं अम्मी!" एक क्षण के लिए उसे लगा जैसे अम्मी अभी कहेंगी 'जा, कल ही बाज़ार से दुकान का सामान...यूनिफ़ार्म...जूते...'।

“क्या सोच रहा है माजिद?”

“कुछ नहीं अम्मी!” वह चौंक पड़ा, “मैं सोच रहा था कि शनिवार और इतवार को वह नीली गाड़ी हमारे चौराहे पर नहीं आती।”

“तो फिर इतने सारे रुपए हमें यहाँ दो-तीन दिन और रखने पड़ेंगे!.. अब जो भी हो, परन्तु किसी को मत बताना। सोमवार को उन कार वाले साहब को यहीं ले आना, मैं खुद यह बटुआ उन्हें दूँगी।”

“ठीक है अम्मी।” माजिद ने संतोष की साँस ली।

अगले दिन जब माजिद रमेश को सब कुछ बता चुका, तो उसने केवल एक शब्द कहा, “फिर!”

“फिर क्या! हमें अब डी.एल.सी. 1545 ढूँढ़नी है।” माजिद ने आत्मविश्वास के साथ कहा।

“ठीक है!” रमेश की आवाज़ में भी कोई संकोच नहीं था।

सोमवार को भी वह गाड़ी नहीं आई, परन्तु मंगल को माजिद एकदम चीखा—“वह रही...1545” वह आगे दौड़ा, उसने फूलती साँस को संभालते हुए कार वाले साहब से कुछ कहा, और नीली गाड़ी चौराहा पार करके बाईं पटरी के पास रुक गई। दोनों दोस्त शीघ्र ही वहाँ पहुँच गए।

गाड़ी वाले साहब तो दोनों को उसी समय माजिद के घर ले जाना चाहते थे, बल्कि उनके सारे अखबार भी खरीदने को तैयार थे, पर लड़कों को अखबार वाले से हिसाब करना था, इस कारण उन्हें कुछ देर रुकना पड़ा।

टाट के परदे की ओट से माजिद की माँ ने जब बटुआ कार वाले साहब की ओर बढ़ाया तो उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। वह बुदबुदाए, “भगवान जाने यह सपना है या...”

“साहब!...मैंने खुद गिने थे। इसमें नौ हजार...सात सौ...और तीस...रुपए हैं...माजिद ने मेरे सिर की कसम खाई है...”

"ठीक है ठीक है...! साहब ने जल्दी से कहा "...रुपयों की तो कोई ऐसी बात नहीं...पर इसमें जो दूसरे कागज थे.... भगवान तेरा शुक्र है...!" उन्होंने हाथ जोड़कर अपने माथे से लगाते हुए कहा और माजिद व रमेश को खींचकर गले लगा लिया। "अगर आप मानें.. " उन्होंने कुछ झिझकते हुए कहना आरंभ किया, "...तो मैं ये रुपए.. आपके बच्चे को पुरस्कार के रूप में भेंट कर दूँ..आप बहुत भाग्यशाली हैं कि आपको ऐसा ईमानदार बेटा मिला है।"



“आप का बहुत-बहुत शुक्रिया,” माजिद की अम्मी ने दृढ़ता से कहा, “पर मैं चाहती हूँ यह जो भी करे अपनी हिम्मत और मेहनत से करे।”

“अच्छा, अच्छा,”...साहब, माजिद और रमेश को लेकर तेज़ी से गली में आ गए।

वहाँ कार के मालकिन बैठी थी। उन्होंने माजिद की पीठ थपथपाई।

नीली गाड़ी की वह मालकिन कई बार माजिद की अम्मी से मिलने आई। इन लोगों की समस्याएँ देख कर उन्होंने निश्चय कर लिया था कि जैसे भी हो वह इनकी सहायता करेंगी। बड़ी मुश्किल से माजिद की अम्मी को उस सहकारी बैंक का सदस्य बनने पर सहमत कर लिया गया जिसके मैनेजर नीली गाड़ी वाले साहब थे। माजिद की अम्मी यह मान गई। सदस्यता के लिए आवश्यक शुल्क साहब ने उधार के रूप में जमा करा दिया, जिसे माजिद की अम्मी ने किस्तों में साहब को लौटा दिया। फिर नियमानुसार माजिद की अम्मी सहकारी बैंक से उधार लेकर अपनी दुकान चलाने लगी।

एक दिन फिर रमेश ने माजिद के दरवाजे पर आकर उसे पुकारा तो माजिद हाथ की धुली यूनिफ़ॉर्म और जूते पहने, स्कूल का बस्ता झुलता, अम्मी को ‘खुदा हाफ़िज़’ कहता बाहर निकल आया।

अम्मी खुशी के आँसू पोछती हुई मुस्कुरा रही थीं। □□

कबूतर

नवीन मेनन

“शू SSS...मूर्ख कबूतर !”

दादाजी की आवाज सुनकर सिद्धार्थ जाग गया। दादाजी कमरे से कबूतर को भगाने की कोशिश कर रहे थे। कबूतर पंखे से उड़कर अलमारी पर बैठ जाता, फिर अलमारी से उड़ता और खिड़की पर जा बैठता।

“दादाजी रहने दो न।” सिद्धार्थ के मुँह से निकल पड़ा।

“ये घोंसला बना लेंगे तो इनको बाहर निकालना मुश्किल हो जाएगा। फिर पंखे से इनको चोट भी लग सकती है।” दादाजी ने जवाब दिया।

“घोंसला तो ये बना ही चुके हैं और उसमें छोटे-छोटे दो अंडे भी हैं,” सिद्धार्थ बोला।

तभी कमरा साफ़ करने के लिए चमेली अंदर आ गई। उसने बातचीत सुनी और किसी के कुछ कहने से पहले ही अलमारी पर झाड़ू मारकर घोंसला ज़मीन पर गिरा दिया।

धप्प घोंसला गिर गया। घोंसले में रखे अंडे फूट गए। सिद्धार्थ रुआँसा हो गया, “यह क्या किया तुमने?”

दादाजी को भी गुस्सा आ गया। कबूतरों का अंदर आना उन्हें अच्छा तो नहीं लगा था, मगर वह दयालु स्वभाव के थे। किसी को सताना उन्हें अच्छा नहीं लगता था।

लेकिन चमेली को इस सबसे कोई मतलब नहीं था। दादाजी सिद्धार्थ को सांत्वना दे रहे थे, कि चमेली ने उछलकर कबूतर को पकड़ लिया। एक लाल फीते से उसने कबूतर का पैर बाँध दिया। जैसे ही उसने कबूतर को ज़मीन पर टिकाया, वह उड़ा और खिड़की से होता हुआ बाहर निकल गया। उसके एक पंजे में फ़ीता बँधा हुआ था। चमेली चकित रह गई। सिद्धार्थ और दादाजी भी देखते रह गए।



“देखो, अपने को बंधन से मुक्त करने की इनमें कितनी बुद्धि है।” दादाजी समझाने लगे, “तुम देखना यह फिर से घोंसला बनाएगा और अंडे देगा।”

“इस बार हम सावधानी से इनकी देखभाल करेंगे।” सिद्धार्थ ने कहा।

इसके बाद, कई दिन तक कबूतर रोज़ आता रहा। वह इधर-उधर बैठता। उसके पैर में अभी भी फ़ीता बँधा हुआ था। ‘यह ज़रूर अपने घर को याद कर रहा है,’ सिद्धार्थ अपने आप से कहता, ‘काश! मैं इसकी कुछ मदद कर पाता।’

इस बीच परीक्षाएँ नज़दीक आ गईं। सिद्धार्थ पढ़ाई में बहुत होशियार न था, इसलिए अच्छे नम्बर लाने के लिए उसे ज़्यादा मेहनत करनी पड़ती थी।

सिद्धार्थ की कक्षा में एक और लड़का था—अमित। अमित खूब खेलता-कूदता भी था, और कक्षा में हमेशा पहला स्थान प्राप्त कर लेता था।

अमित का घर उसके पड़ोस में था। शाम को जब वह खेलने निकलता तो कालोनी के सब बच्चे उसे हीरो की तरह निहारते।

और सिद्धार्थ...वह तो इसी सोच में डूबा रहता था कि अमित इतना खेलता भी है और पढ़ने में भी कैसे सबसे आगे है! यही सब सोचते हुए वह अपने किसी दोस्त के साथ पार्क में जाता और खेल में अपनी बारी का इन्तजार करता।

आज सिद्धार्थ अपने आप को उस कबूतर की तरह महसूस कर रहा था।

“मूर्ख!” दादाजी ने कबूतर के लिए कहा था लेकिन सिद्धार्थ ने मन ही मन में कहा, ‘मैं भी तो ‘मूर्ख’ ही हूँ।’ वह सोचने लगा, ‘मैं मेहनत करूँगा, करूँगा, करूँगा। मैं अच्छे नम्बर लाऊँगा इस बार।’

सिद्धार्थ ने अपने आप से वायदा किया। 'एक मूर्ख कबूतर पैर बँधे होने पर भी आज़ाद होकर उड़ जाने में सफल हो सकता है तो मैं भी इस बार अच्छे नम्बर लाकर रहूँगा।' इसी दृढ़ निश्चय के साथ सिद्धार्थ अपनी पढ़ाई में जुट गया।

कक्षा दस का परीक्षाफल घोषित हो चुका था। सिद्धार्थ को अपना परिणाम देखने जाना था किन्तु उसके अन्दर ज्यादा उत्साह नहीं था। "चलो, चलो, झट से तैयार हो जाओ," दादाजी ने कहा। "देखना हमारा बेटा कितने अच्छे नम्बर लाएगा।"

"क्या फायदा," सिद्धार्थ ने उदास होकर कहा, "हर बार की तरह..." वह आगे बोल न सका।

"क्यों, तुमने मेहनत नहीं की क्या?" दादाजी ने सिद्धार्थ से पूछा।

"मैंने कड़ी मेहनत की है दादाजी" सिद्धार्थ ने जवाब दिया, "मुझे विश्वास है मेरा नतीजा अच्छा ही रहेगा, परन्तु फिर भी, इस बार अगर मैं..."

भारी मन से सिद्धार्थ तैयार हुआ। फिर वे दोनों विद्यालय के लिए रवाना हुए। रास्ते में दादाजी इधर-उधर की बातें कर रहे थे। सिद्धार्थ जानता था, दादाजी उसका तनाव दूर करने की कोशिश कर रहे थे। वे रास्ते में तीन बार रुके। पहली बार दो बच्चों को झगड़ते देखा तो दादाजी ने गाड़ी रोक दी...फिर पेड़ के नीचे दो गिलहरियों को देखकर ठहर गए...तीसरी बार अलका आंटी के पिल्ले देखने के लिए रुक गए।

"दादाजी, जल्दी, जल्दी चलिए न," सिद्धार्थ ने कहा, "सभी बच्चे अब तक पहुँच चुके होंगे।"

"धीरज रखो बेटा, बस हम अभी पहुँच जाएँगे।"

स्कूल में काफ़ी भीड़ थी। सिद्धार्थ अपना नाम देखने के लिए उतावला था। दादाजी ने प्यार से उसका कंधा थपथपाते हुए कहा, "अपनी बारी का इंतज़ार करो, बेटा।"

सिद्धार्थ ने अपना परीक्षाफल देखा। विद्यालय में उसने प्रथम स्थान पाया था। अपने सभी सहपाठियों को पीछे छोड़ दिया था। सूची में उसका नाम सबसे ऊपर था। पहले सिद्धार्थ को विश्वास नहीं आया, फिर वह दादाजी के पास आ गया।

“मैं सबसे आगे निकल गया दादाजी,” सिद्धार्थ खुशी से चिल्ला पड़ा, “मैंने सबको पछाड़ दिया।”

दादाजी बहुत प्रसन्न थे। “तुमने किसी को नहीं पछाड़ा है,” उन्होंने शांत भाव से कहा, “मुकाबला तो तुम्हारा खुद से ही था।”

सिद्धार्थ को पैर में फीता बँधे उस कबूतर की याद हो आई। पैर बँधे होने के बावजूद वह उड़ने में सफल हो गया था।

सिद्धार्थ ने भी अपने आपसे किया वायदा पूरा कर दिखाया था।

उसको अपने पर विश्वास था।

“नहीं दादाजी, मेरा मुकाबला न अपने से था न किसी और से। मुझे तो बस उस कबूतर ने रास्ता दिखाया था, जिसके पैर चमेली ने बाँध दिए थे,” सिद्धार्थ बोला। “कई बार सपने में भी वही पैर बँधा कबूतर दिखाई पड़ता था जो हम सबको छकाकर आजाद हो गया था।”

“तब तो मैं तुम्हारे कबूतर को कभी मूर्ख नहीं कहूँगा।” कहकर दादाजी हँस दिए, “उसने तुम्हें नई राह जो दिखाई है।”

सिद्धार्थ धीरे-धीरे हँस रहा था।



विकास

प्रतिभा नाथ

अप्रैल का महीना था। बोर्ड की दसवीं की परीक्षाएँ समाप्त हो चुकी थीं। विकास और उसके साथी अर्जुन, रवि और तुषार (उर्फ तोता) रेलवे स्टेशन पर खड़े थे, बोर्डिंग स्कूल से घर जाने के लिए तैयार। अपना-अपना सामान संभाले, ग्यारह बीस की अंबाला जाने वाली पैसेंजर ट्रेन की राह देख रहे थे।

विकास के तीनों साथी बड़े खुश दिखाई दे रहे थे। तोता तो सबसे अधिक चहक रहा था। वह कह रहा था, "अब तो मज़ा ही मज़ा है। लम्बी छुट्टियाँ है। मैं तो डटकर सोऊँगा। माँ से हाथ जोड़कर दिनय करूँगा, 'कृपया मुझे सुबह-सुबह जगाना मत। मैं स्कूल की छः बजे वाली घंटी सुन-सुनकर परेशान हो गया हूँ।'" अर्जुन बोला, "मैं तो दिनभर क्रिकेट खेलूँगा।" रवि ने कहा, "माँ ने मेरे लिए लड्डू बनाए होंगे। मैं तो खूब खाऊँगा।" दोस्तों की बातें सुनकर विकास फीकी सी हँसी हँस दिया। कुछ बोला नहीं। उसके मन पर तो एक भारी बोझ रखा था। एक फ़ैसला किया था उसने, जिसे वह अपने माता-पिता को बताना चाहता था। पर डरता था कि उसके फ़ैसले से वे खुश नहीं होंगे।

गाड़ी आते ही सब लड़के दौड़कर डिब्बे में चढ़ गए। इंजन ने सीटी दी और गाड़ी चल दी, लेकिन थोड़ी दूर जाकर खड़ी हो गई। विकास के साथी बेचैन हो रहे थे, परन्तु विकास को कोई जल्दी नहीं थी। वह तो सोच रहा था कि यात्रा जितनी लम्बी हो जाए उतना ही

अच्छा। माता-पिता के सामने खड़े होकर अपना फ़ैसला सुनाने के लिए हिम्मत की जरूरत थी और हिम्मत अभी विकास को जुटानी थी।

गाड़ी फिर से चल दी। उसकी खड़खड़ाहट के स्वर में स्वर मिलाता हुआ तोता धीरे-धीरे गाने लगा। अर्जुन टकटकी लगाए खिड़की से बाहर देख रहा था और रवि एक किताब से चिपका बैठा था। पर विकास को चिन्ता ने घेर रखा था। माँ क्या कहेंगी? पिता जी क्या बोलेंगे? कहीं बिगड़ गए तो?

यात्रा समाप्त हुई। अंबाला स्टेशन आ गया। अर्जुन के पिता अपनी जीप लेकर आए थे। तोता और रवि भी उनके साथ ही जा रहे थे क्योंकि उन सबके घर पास-पास थे। पर विकास को अलग ही दिशा में जाना था। उसे लेने कोई नहीं आया था। विकास ने साथियों से विदा ली और फिर जल्दी-जल्दी कदम उठाता हुआ स्टेशन से बाहर निकल गया। एक रिक्शा पकड़ा और घर की राह ली।

रिक्शा धीरे-धीरे चल रहा था। विकास के पिता का फ़ार्म पास आता जा रहा था और विकास के सामने पिछली कुछ तस्वीरें उभर रही थीं। कुछ वर्ष पहले उसके पिता फ़ौज में मेजर थे। लम्बे, चौड़े, सुडौल और परम साहसी। परन्तु सियाचिन ग्लेशियर पर पोस्टिंग के बाद उनकी सेहत पहले की तरह नहीं रही। उन्होंने फ़ौज की नौकरी छोड़ दी। अपनी जमा-पूँजी का बहुत बड़ा हिस्सा लगाकर गाँव में यह खेत खरीदा था। कड़ी मेहनत करते थे विकास के पिता। विकास का मन चाहता था कि वह भी उनका हाथ बँटाए, पर यह बात उनसे कैसे कह सकता था? जब भी घर में विकास के भविष्य की बात होती तो माता-पिता, दोनों ही कह उठते, "बेटा, तुम जो चाहो बन सकते हो। डाक्टर बनो या इंजीनियर, या फिर आई.ए.एस. की परीक्षा में बैठो। बुद्धिमान हो, अच्छी से अच्छी नौकरी मिल सकती है। इसीलिए तो तुम्हें दिल्ली के बड़े स्कूल में भरती कराया है।"

अचानक रिक्शा रुक गया। विकास ने देखा वह घर के बाहर आ पहुँचा था। आँगन का बन्द दरवाज़ा हल्के धक्के से ही खुल गया। माँ सामने ही खड़ी थीं। रस्सी पर से सूखे कपड़े उतार रही थीं। विकास

को देखकर उनके चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गई। "अरे बेटा, तू आ गया, हमें ख़बर क्यों नहीं दी? हम तुझे लिवा लाते।" उनकी आवाज़ सुन, विकास के पिता जी भी वहाँ आ गए। "आओ बेटा", कहते हुए उन्होंने विकास को गले से लगा लिया।

बड़ी देर तक गप-शप चलती रही। चाय बनी, नाश्ता हुआ, विकास ने जी भर के मटरियाँ खाई आम के अचार के साथ। अंत में माँ ने कहा, "मैं तो गाय दुहने जा रही हूँ।" पिता जी अख़बार उठाकर पढ़ने लगे और विकास आँगन का दरवाज़ा खोलकर टहलने के लिए बाहर निकल गया।

सूरज लगभग डूब चुका था। खेतों पर साँझ का धुंधलका छाता जा रहा था। अपने विचारों में खोया हुआ विकास देर तक घूमता रहा। उसने कलाई-घड़ी देखी—आठ बज रहे थे। पिताजी तो आठ बजे खाना खा लेते थे। सोचकर वह जल्दी-जल्दी घर की ओर वापस चल दिया।

घर से कुछ दूर, एक खेत के कोने में एक छोटा-सा कमरा बना हुआ था, जिसमें खेती-बाड़ी का सामान रखा रहता था। विकास ने अन्दर झाँका तो हैरान रह गया—पिताजी वहाँ खड़े थे।

पास जाकर विकास ने पूछा, "आप यहाँ? इस समय?"

"हाँ बेटा, तुम्हें ढूँढ़ने निकला था। आओ, कुछ देर बातें करें।"

दोनों खेत की मेंड़ पर बैठ गए। कुछ सोचकर पिताजी बोले, "देख आए फ़ार्म? क्या देखा?"

विकास ने धीमे स्वर में कहा, "मैंने देखा कि...कि कई खेत खाली पड़े हैं। ऐसा क्यों है पिताजी?"

"क्या बताऊँ बेटा! जितनी फ़सल मैं बोना चाहता था उतनी नहीं कर पाया। इतनी मेहनत करना मेरे बस की बात नहीं। मज़दूर मुश्किल से मिलते हैं, फिर जितने मज़दूर उतना खर्च। यही मुश्किल है!"



“मैं एक बात कहूँ?”

“हाँ, हाँ, क्यों नहीं।”

“क्यों न हम ख़ाली ज़मीन पर फलों के पेड़ लगा दें? मैंने सुना है उन्हें कम देखरेख चाहिए। मेहनत कम लगेगी।”

“ठीक ही सुना है तुमने। परन्तु यहाँ पेड़ लगाएगा कौन? सौ, डेढ़ सौ गड्ढे खोदना, मिट्टी तैयार करना, कौन करेगा यह सब?”

“मैं करूँगा। अभी तो मेरी छुट्टियाँ शुरू ही हुई हैं। आप मुझे एक बार बता दें, क्या करना है, फिर मैं एक मज़दूर को साथ लेकर पूरी तैयारी कर दूँगा। बरसात आने पर आप पेड़ लगा लीजिएगा।”

उसके पिता मुस्कुरा कर बोले, “इतनी मेहनत करोगे तुम? छुट्टियाँ तो घूमने फिरने और सोने के लिए होती हैं।”

“और यदि इस काम में ही आनन्द आए तो?” विकास हँसकर बोला। “यदि आप और माँ राज़ी हों तो मैं पढ़ाई पूरी करके यहीं आ जाऊँ। हम मिलजुल कर काम करेंगे। फिर देखिए कैसी शानदार फ़सलें उगाएँगे हम।”

पिता हैरानी से देखने लगे उसे। बोले, “यह ऐसा फ़ैसला नहीं है जो झटपट लिया जा सके। सारा जीवन गाँव में काटना आसान नहीं है।”

“जी हाँ। पर सारा जीवन शहर में काटना उससे भी ज्यादा मुश्किल है। मैं तो आपके पास रहकर आपके साथ काम करना चाहता हूँ। आप मान जाइए। माँ को भी मना लेते हैं।”

“तुम्हारी माँ तो झट मान जाएँगी। बेटा, सच तो यह है कि जब से यह फ़ार्म ख़रीदा है, हम दोनों को यही आशा रही है कि किसी दिन तुम हमारे साथ रहने आ जाओगे। शहर की भीड़-भाड़ से दूर, साफ़, खुली हवा में हम सब मिलकर अपनी इस ज़मीन को स्वर्ग बनाएँगे।”

विकास चौंक उठा। “पर पिताजी, आपने तो कभी ऐसा कहा नहीं। आप तो मेरे लिए ऊँची से ऊँची नौकरी की बात ही करते थे।”

पिता ने विकास के कंधे पर हाथ रख दिया, “बेटा, हम चाहते थे कि तुम अपनी इच्छानुसार कैरियर चुनो। हमें डर था कि हमारी इच्छा कहीं तुम्हारा रास्ता न रोक दे। कहीं तुम अपने असली लक्ष्य से भटक न जाओ।”

विकास के होंठों पर मुस्कान आ गई, “मैं अब अपने असली रास्ते पर आ गया हूँ। आइए, जल्दी से घर चलें। मुझे कल सवेरे ही काम शुरू करना होगा, आपकी देख-रेख में। पर उससे पहले माँ को भी तो यह खुशखबरी सुनानी होगी।”

विकास के पिता उठ खड़े हुए। दोनों चल दिए। विकास मन ही मन सोच रहा था, “मेरे साथी जब मेरा फैसला सुनेंगे तो क्या कहेंगे भला?” पर निर्णय उसने लिया था। वह मन ही मन प्रसन्न था।



फोटो एलबम

नीलिमा सिन्हा

ट्रिंग-ट्रिंग घंटी बजी। हरि और दीपक सदा की भाँति साथ बैठे थे। "दीपक, देख, मैं क्या लाया!" हरि फुसफुसाया।

"चुप...!" दीपक ने हरि का हाथ झटक दिया।

"लड़कू हैं!" डेस्क के नीचे छिपाकर टिफिन खोलते हुए हरि बोला, "आ गया न मुँह में पानी?"

मास्टर जी अंदर आ चुके थे।

आज वह अच्छे मूड में थे। हरि ने जब उनके प्रश्न का बेसिर-पैर, गोलमोल उत्तर दिया तब वे मुस्कुरा भर दिए। न डाँटा, न सजा दी।

"बच्चो, ध्यान दो," मास्टर जी बोल रहे थे, "पंद्रह अगस्त के लिए एक प्रतियोगिता आयोजित की गई है। छात्रों को एक परियोजना तैयार करनी होगी। विषय है— हमारी ऐतिहासिक धरोहर। श्रेष्ठतम कार्य को पुरस्कार मिलेगा। कुल बीस दिन बचे हैं। तुम सब तैयारी में जुट जाओ।"

घोषणा सुन, दीपक बहुत उत्साहित हुआ। घर लौटते समय हरि क्रिकेट की बातें करता रहा, पर दीपक की कल्पना साइकिल के पहियों से भी अधिक गति से दौड़ रही थी। वह एक फोटो एलबम बनाएगा। सारी जानकारियाँ लेने पुस्तकालय जाएगा, प्रोफेसर मामा जी से तुरंत मिलेगा। वे इतिहास पढ़ाते हैं।

घर पहुँचकर दीपक ने माँ और तारु को पूरी बात बताई। छोटी बहन तारु ने झट घोषणा कर दी, "भैया ही जीतेंगे!"

दीपक उसी दिन से काम में जुट गया। सबसे पहले उसने भारत का नक्शा बनाया। दिल्ली की कुतुब मीनार और लाल क़िले के चित्र उपयुक्त स्थानों पर चिपकाए। आगरा के ताजमहल, वाराणसी के घाट, लखनऊ के इमामबाड़ा, हैदराबाद की चार मीनार, खजुराहो के मंदिर, अजंता की गुफाएँ, हम्पी के खंडहर और पुरी, द्वारका तथा दक्षिणी तट पर बने प्राचीन मंदिरों के छोटे-छोटे चित्रों को ढूँढ़कर ठीक स्थान पर चिपका दिया। फिर बड़े चित्र अलग-अलग पन्नों पर लगाकर उनसे जुड़ा इतिहास लिखा। एक ओर थे रंग-बिरंगे चित्र, दूसरी ओर सजावट में चार चाँद लगाती, सुंदर, सजीले अक्षरों में लिखी ऐतिहासिक जानकारी।

अंतिम तिथि से दो दिन पहले ही सारी तैयारी पूरी हो गई। दीपक बहुत प्रसन्न था। एलबम आकर्षक बन गया था। वह उसे गर्व से निहार रहा था। तभी हरि की आवाज़ आई, “क्या यार, ईद के चाँद बन गए हो! खेलने चलोगे या नहीं?”

दीपक के हाथ में मोटा एलबम देख हरि चकित हो गया। “अरे, तूने तो तैयार कर लिया। शुरू तो मैंने भी कर लिया है, पर कुछ काम बाकी है। कर लूँगा।”

“देखोगे? यह है झाँसी का किला, जहाँ से रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेज़ों से युद्ध लड़ा था। यह है जयपुर का हवामहल, और यह हम्पी जहाँ के खंडहरों में संगीत है,” एलबम के पन्ने पलटते हुए दीपक ने बताया।

“कमाल है...तू ही जीतेगा, यार!” हरि बोला।

आखिर एलबम जमा करने का दिन भी आ गया। दीपक के मन में बड़ी उमंग थी। वह उठा, लपककर उसने दराज़ खींची। पर यह क्या! दराज़ खाली थी! उसका दिल धड़कने लगा। घबराकर पूरी दराज़ बाहर निकाल ली, लेकिन...दीपक पर जैसे बिजली गिरी, “माँ...माँ!”

“क्या हुआ?” वह दौड़ी आई।

“मेरा एलबम कहाँ गया?”

“कहाँ रखा था, तुमने?”

“यहीं तो था!” वह पागलों की तरह इधर-उधर तलाश रहा था। एक के बाद दूसरी दराज़ खींची। अलमारियों के दरवाज़े पीटे, किताबें फेंकीं, बिस्तर उलट दिए पर एलबम नहीं मिला।

“जरूर तारू की शरारत है,” कहता हुआ वह बहन के कमरे की ओर लपका, पर तारू के चेहरे से स्पष्ट हो गया कि उसे कुछ मालूम नहीं था। सभी एलबम की खोज में जुट गए। घर का कोना-कोना छान डाला गया, लेकिन एलबम नहीं मिला।

दीपक निराश, हताश बिस्तर पर जा गिरा। अब नहीं जाएगा स्कूल, जाने से क्या फायदा?

“मिला एलबम?” स्कूल से लौटते ही तारू ने पूछा।

दीपक ने इनकार में सिर हिला दिया।

“इतना खूबसूरत एलबम! किसी का दिल मचल गया होगा। याद करो, किस-किस को दिखाया था?” तारू ने पूछा।

दीपक ने बहुतों को दिखाया था...मामाजी को, रामू को, सारे पड़ोसियों को...किस-किस का नाम गिनाए?

शाम को हरि आया, उसने पूछा “दीपक, स्कूल क्यों नहीं आया था?”

दीपक ने पूरी बात बता दी। हरि चुपचाप सुनता रहा, फिर उठ खड़ा हुआ। “यार, एक शादी में जाना है। माँ ने कहा था जल्दी आ जाना। चलूँ।” और वह चलता बना।

शादी और हरि? सुन कर दीपक की माँ हँसीं। हरि की माँ और दीपक की माँ पुरानी सहेलियाँ थीं। रात को जब दोनों सहेलियों की

टेलीफोन पर बात हुई तो सभी चकित हो गए। पता चला कि कोई शादी नहीं थी। पूरा परिवार शाम को घर ही में था।

“भैया, तुम्हारे दोस्त ने झूठ क्यों बोला? हो न हो, इसी ने कुछ गड़बड़ की है। कहीं उसीने तो तुम्हारा एलबम नहीं लिया?” तारु ने सोचते हुए कहा।

“यह कैसे हो सकता है!”

“क्यों नहीं हो सकता?”

“बिना प्रमाण के किसी पर शक नहीं करना चाहिए,” दीपक ने बहन को डाँटा।

पर तारु ने पापा को सब कुछ बता दिया। वह सोच में डूब गए। दीपक की माँ की ओर देखकर बोले, “ताज्जुब है। जानती हो, एलबम जमा कराने से एक रात पहले, हरि यहाँ आया तो था। तब दीपक बाजार गया हुआ था। मैंने कहा भी कि दीपक घर पर नहीं है। इस पर बोला, कोई बात नहीं, उसकी कोई कॉपी दीपक के पास है। मैंने कहा, ठीक है, जाओ ले लो लेकिन...”

“जब वह कमरे में से लौटा तो उसके हाथ में क्या था?” तारु ने बीच में पूछा।

“यही याद करना चाह रहा हूँ। उसके हाथ खाली थे।”

“एलबम था”

चुटकी बजाकर पापा उठ खड़े हुए। “तभी तो कहूँ कि याद क्यों नहीं आता। क्योंकि वह लौटा ही नहीं।”

“मतलब? कहाँ गया?”

“शायद पीछे के दरवाजे से निकल गया था।” पापा बोले।

“चुपचाप?” दीपक ने धीरे से पूछा।

“ओह तभी पीछे के किवाड़ खुले हुए थे!” माँ ने याद करके कहा।

“लो चोर पकड़ा गया। दोस्त ही चोर निकला। उसी ने रात को चोरी की!” तारु के शब्द दीपक को तीर की तरह चुभे। पर अब शक नहीं, विश्वास हो गया दीपक को। हरि से बात भी करने का मन नहीं था। जब कक्षा में गया तो सबसे पीछे की सीट पर बैठा। छुट्टी होते ही साइकिल उठाई और अकेला घर लौटा। हरि ने बात करने की कोशिश की तो मुँह फेर लिया।

यही सिलसिला रोज चलता रहा। धीरे-धीरे हरि ने भी दूरी बना ली।

उस दिन दोनों अपने-अपने घर से साथ-साथ निकले। दीपक ने ब्रेक लगाया और हरि को आगे बढ़ने दिया। हरि भी बेधड़क, सीधी सड़क पर सीटी बजाते हुए चल दिया। उसने दोनों हाथ हैंडिल से उठा लिए थे, मानो सड़क पर नहीं, सरकस में हो।

एक जोरदार टक्कर! एक भयानक चीख, और हरि धरती पर लोट गया। बस आगे बढ़ गई।

दीपक ठिठका, उसकी साइकिल लड़खड़ा गई, फिर वह दौड़ पड़ा। बेहोश हरि के मुँह पर पानी छिड़का। उसकी आँखें खुलीं तो मदद लाने के लिए दौड़ा। किसी तरह एक तिपहिया रोका और हरि को सहारा देकर अस्पताल पहुँचाया। डाक्टरों ने जाँच करने के बाद बताया, “आप इसे ठीक समय पर ले आए। अब कोई खतरा नहीं।” दीपक ने हरि के माता-पिता को सूचना दी।

दो-चार दिन में हरि ठीक हो गया। स्कूल भी आने लगा, पर दोनों मित्रों में बातचीत अब भी बंद थी।

आज स्कूल में बड़ी धूम है। प्रतियोगिता का नतीजा निकलने का दिन आ गया। बारी-बारी से हर कक्षा के प्रतियोगिता परिणामों की घोषणा होने लगी। आखिर दीपक की कक्षा की बारी आई।

“हमारी ऐतिहासिक धरोहर—इनाम मिला है—दीपक कुमार को।” प्रधानाध्यापक ने घोषणा की।



दीपक को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ, फिर भी वह मंच पर गया। पुरस्कार लिया, पर यह पहेली समझ में नहीं आ रही थी!

घर जाते समय हरि मिल गया।

“दीपक, अब भी मुझसे बात करेगा या नहीं?” वह सामने राह रोककर खड़ा था। दीपक चुप रहा।

“माना मैंने गलती की, तेरा जी दुखाया। पर.....”

“तुमने ही एलबम चुराया था। मुझे सब पता है।”

“हाँ, मुझे पता है कि तुझे पता है। मैंने ही चुराया था एलबम। उस दिन जब मैंने तुम्हारा एलबम देखा तो बदन में जैसे आग लग गई। ईर्ष्या से जल-भुन गया था। तुझे इनाम मिल जाएगा, हमेशा की तरह, और मैं देखता रहूँगा, हर बार की तरह! इसीलिए...जब तू बाज़ार गया तब...” वह रुक गया। फिर बोला, “पहले सोचा, एलबम पर अपना नाम चढ़ा लूँ...लेकिन...अंत में नहीं कर पाया। तू नहीं आया तो तेरा नाम लिखकर, तेरी तरफ से मैंने जमा करा दिया और तू जीत गया, हमेशा की तरह!” हरि ने कहा।

“असली जीत तो तेरी ही हुई,” हँसकर दीपक बोला। हाथ में हाथ डाले दोनों मित्र तेजी से साइकिल दौड़ाते हुए बढ़ चले। □□

मान बहादुर

वीरबाला रस्तोगी

खट, खट, खट, खट। मानू की नींद खुल गई। खट, खट! खट, खट! खच्च, खच्च! किसकी आवाज़ हो सकती है? गौशाला के पास ही लगती है। क्या कोई कुल्हाड़ी से पेड़ काट रहा है? यहाँ तो सेबों से लदे पेड़ हैं! क्या कोई सेबों के पेड़ काट रहा है! अनेक आशंकाओं से मानू का मन भर उठा। नींद तो दूर भाग गई थी। वह उठ बैठा। पास में सोए जग्गू को हिलाया, "जग्गू! जग्गू! उठो, लगता है कुछ लोग गौशाला के पीछे पेड़ काट रहे हैं।" गहरी नींद में सोया जग्गू करवट बदल कर फिर सो गया।

बचपन से ही मानू, तेजसिंह प्रधान के घर में रहता है। अपने माता-पिता की उसे धुंधली सी याद है। कहते हैं वे दोनों किसी रेल दुर्घटना में मर गए थे। इस घर को ही वह अपना घर मानता है। यहीं से उसे खाना-कपड़ा मिलता है। जग्गू पास के गाँव का रहने वाला है। दोनों दिन-भर प्रधान की गायों को जंगल में चराते, प्रधान के घर में खाना खाते और गौशाला के ऊपर बने कमरे में सोते। प्रधान का घर बगीचे के दूसरे कोने में है। बहुत बड़ा है यह बगीचा, जंगल तक फैला हुआ। फलों के पेड़ों की देखरेख के लिए कुछ चौकीदार भी हैं, जो अलग-अलग दिशाओं में बनी झोंपड़ियों में रहते हैं।

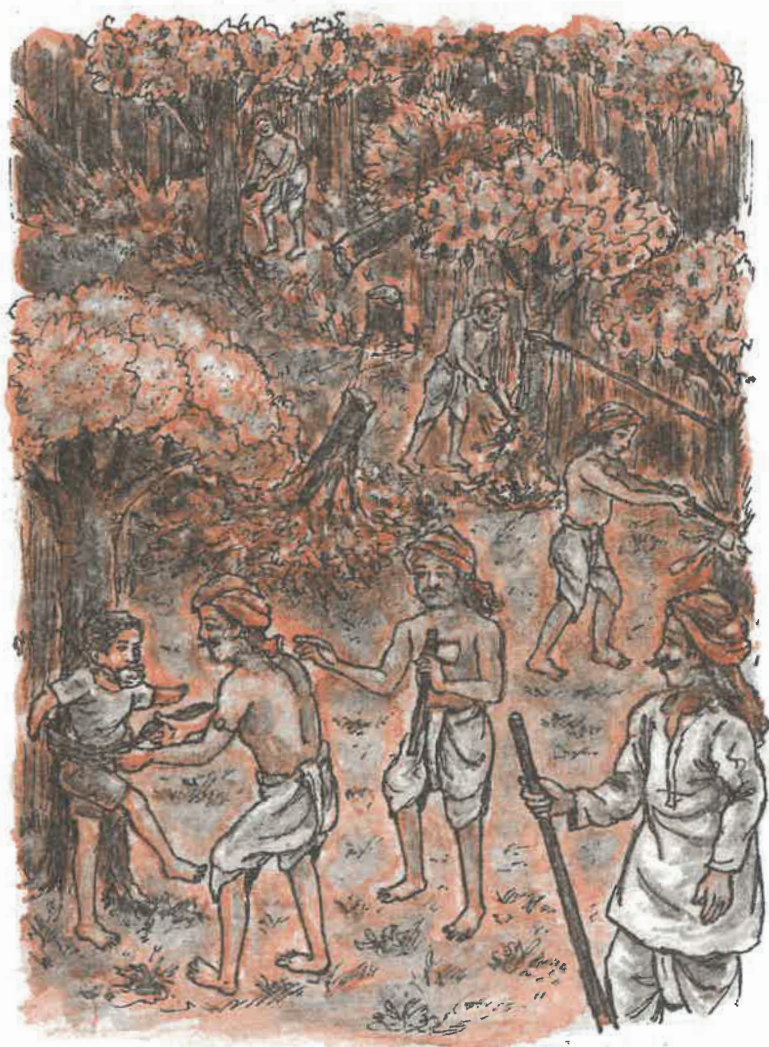
खट, खट! खच्च, खच्च की आवाज़ें बंद नहीं हुईं। अब मानू ने जग्गू के उठने की भी परवाह नहीं की। बाहर निकल उस ओर हवा की तरह भागा, जहाँ से आवाज़ें आ रही थीं। अँधेरे में भी उसे साफ़ दिखाई दिया कि कुछ लोग कुल्हाड़ियों से फलों के पेड़ काट

रहे थे। वह सिहर उठा। वह यहाँ के एक-एक पेड़ को आँखें बंद करके गिन सकता है। सेब, आड़ू, नाशपाती, खुबानी, अलूचे के पेड़। कुछ ही दिनों में हरे-हरे फल लाल-पीले, सुनहरे रंगों में बदल जाएँगे, और अमृत रस से भर उठेंगे। गुस्से से मानू ने दाँत भीच लिए। “कौन हो तुम? फलों के पेड़ क्यों काट रहे हो? हटो! हटो!” पेड़ काटते एक आदमी को उसने अपने पैर से जोर से ठोकर मारी और कुहनियों से उसकी कमर पकड़ने की कोशिश की। “दुष्ट, पेड़ क्यों काट रहे हो? पकड़ो! इन्हें पकड़ो!” वह चिल्लाया। एक मजबूत हाथ ने उसका मुँह बंद कर दिया और उसे पीछे खींचा, “पकड़ लो इस प्रधान के बच्चे को। कहाँ से आ गया? बाँध दो इसे उस चीड़ के पेड़ से! रात भर मिमियाने दो।”

एक आदमी ने अंगोछे से उसका मुँह बाँध दिया, दूसरे ने रस्सी से कमर। “हाथ भी पीछे की ओर बाँध दो।” एक दैत्य-सा आदमी बोला। “हाथ क्या बाँधें, इसके तो हाथ ही नहीं हैं! हाथों की जगह माँस के दो टुकड़े लटके हुए हैं।”

“चलो, इतना ही काफी है, जल्दी करो! काट डालो ज्यादा से ज्यादा पेड़। उजाड़ दो तेजसिंह का बगीचा। सरपंच बनने का मजा चखा दो।” मानू को यह आवाज़ परिचित लगी। अँधेरे में भी उसे इस बोलने वाले की आकृति स्पष्ट दिखने लगी। शालकोट गाँव का मुखिया पंचायत के चुनाव में प्रधान जी के विरोध में खड़ा हुआ था। हार जाने पर बहुत चीखा-चिल्लाया था—“देख लूँगा तेजसिंह कैसे सरपंची करता है? ऐसा बदला लूँगा कि सारी ज़िंदगी याद रखेगा।”

‘ओह, तो यह दुष्ट हार का बदला पेड़ों को काट कर, बगीचे को उजाड़ कर ले रहा है,’ मानू ने गुस्से से ज़मीन को पैरों से कुरेदा। रस्सी के फंदे से निकलने के लिए कसमसाया, पर कमर कसकर पेड़ से बंधी थी। उसके हाथ, जन्म से ही कुहनियों से अन्दर की ओर मुड़े हुए थे। वह केवल दोनों कुहनियाँ जोड़कर ही वस्तुएँ उठा सकता था। एक क्षण को वह अपनी बेबसी पर दुख से भर उठा। दूसरे ही क्षण उसके मन में बिजली की तरह विचार कौंधा—‘पैर! मेरे पैर तो हैं।’



पैर से मैं पहाड़ियों पर चढ़ता हूँ, घाटियों में दौड़ता हूँ, गुलेल पकड़ कर निशाने पर पत्थर फेंकता हूँ, क्लम पकड़कर कक्षा में अ.आ.इ.ई. लिखता हूँ!' अचानक उसे शाम को ज्ञानोदय की कक्षा में सागर भैया की सुनाई 'होशियार खरगोश' की कहानी याद आ गई। एक छोटे से खरगोश ने किस चालाकी से दुष्ट शेर को कुएँ में कूदने पर मजबूर

कर दिया और अपनी तथा जंगल के छोटे-छोटे जानवरों की जान बचा ली थी। पेड़ काटने वाले उसे मूर्ख शेर जैसे ही दिखने लगे।

मानू ने अपनी कुहनियों और पैरों की ओर एक बार गर्व से देखा, फिर दोनों कुहनियाँ जोड़ कर रस्सी खोलने में जुट गया। खुरदरी रस्सी की रगड़ से उसकी कुहनियों में दर्द होने लगा, पर उसने कोशिश जारी रखी। कुछ ही देर में गाँठ इतनी ढीली हो गई कि मानू जमीन पर बैठ गया। कुछ दूरी पर पेड़ काटने वाले बीड़ी सुलगाकर सुस्ता रहे थे। उनका ध्यान इस ओर नहीं था।

मानू ने पायजामे में बनी जेब को दाएँ पैर की उँगलियों से टटोला। खुशी की सिहरन उसके शरीर में दौड़ गई। रात को कक्षा से लौटते समय मशाल जलाने के लिए रखी चीड़ की गोद लगी लकड़ी का टुकड़ा और माचिस वहाँ थी। उसने 20-30 गज की दूरी पर पड़े चीड़ के पत्तों के ढेर की ओर देखा जो फलों की पैकिंग के लिए उसने जमा किए थे। अपने पैरों के बीच लकड़ी को पकड़ा, फिर पैर की उँगलियों से माचिस की तीली निकाली। उसने फुर्ती से लकड़ी जलाकर गुलेल के पत्थर की तरह चीड़ के पत्तों के ढेर की ओर फेंकी। एक ही क्षण में सूखे पत्तों का ढेर मशाल की तरह जल उठा। सारे बगीचे, पहाड़-घाटी में रोशनी फैल गई। पेड़ काटने वाले भौंचक्के रह गए।

दूर बगीचे के कोनों से आवाजें आईं, "आग-आग! दौड़ो! दौड़ो!" घाटी के पार की पहाड़ी से आवाजें गूँजीं, "आग लग गई। आग लग गई।"

मोटी आवाज वाला चिल्लाया, "भागो! भागो! जंगल की ओर भागो।" मानू ने भागते चेहरों को पहचान लिया। सभी लोग शालकोट गाँव के थे। कुछ ही देर में चौकीदार वहाँ पहुँच गए। हाँफते-हाँफते प्रधान भी आ गए। पेड़ों को कटा देखकर उनका मुँह गुस्से से लाल हो गया और गला रुँध गया। इस बीच किसी ने मानू की रस्सी खोली तो किसी ने मुँह पर बँधा अंगोछा। कुछ लोग जंगल की ओर भागे, कुछ ने मानू को घेर लिया। "कैसे? क्या? क्यों?" अनेक प्रश्नों की

बौछार! मानू ने पूरी घटना सुनाई और यह भी बताया कि सबको खबर करने के लिए ही उसने पत्तियों के ढेर में आग लगाई थी। मानू की सूझ-बूझ की सभी लोगों ने सराहना की। "शाबाश मानू। तुम तो खरगोश से भी होशियार निकले," सागर भैया बोले। प्रधान जी ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा "मानू! तूने मेरा बगीचा उजड़ने से बचा लिया। तू हमेशा बेटे की तरह मेरे पास रहेगा। मैं तुझे पढ़ने के लिए स्कूल भेजूँगा।"

दूसरे दिन गाँव की पंचायत ने एकमत से निश्चय किया कि शालकोट के मुखिया और उसके आदमियों की पुलिस मुख्यालय में रिपोर्ट की जाए और उन्हें कड़ी से कड़ी सजा देने की प्रार्थना की जाए। साथ ही पर्यावरण दिवस के दिन सारा गाँव मानू का सम्मान करे। उसे कपड़े, पुस्तकें आदि पुरस्कार देकर भविष्य में 'मान बहादुर' नाम से सम्बोधित किया जाए। रात में 'ज्ञानोदय' की कक्षा में सागर भैया ने पुकारा 'मान बहादुर'। फिर चुटकी बजाकर बोले, "नहीं, मानू खरगोश!" सारी कक्षा तालियों की आवाज से गूँज उठी और मानू खिलखिलाकर हँस पड़ा।



चिड़ियों की टोली

देवेन्द्र कुमार

चिड़ियों की टोली उतरती है दोपहर में एक बजे। स्कूल बस ग्लोरी अपार्टमेंट्स के सामने रुकती है। सबसे पहले रजत की आवाज़ गूँजती है, “दादी, हम आ गए।” हम यानी ग्लोरी अपार्टमेंट्स के ग्यारह फ्लैटों में अलग-अलग रहने वाले अणिमा, नागेश, अनामिका, संतोष, रवि, तरला, अपर्णा, ललित, रमेश, विनय और रजत। बच्चे भले ही अलग-अलग हैं, पर दादी सबकी एक है। उन्होंने ही बच्चों को नाम दिया है— *चिड़ियों की टोली*।

बस का दरवाज़ा खुलता है। पहले सबसे छोटा संतोष उतरता है। दादी हाथ पकड़कर उतारती हैं। सिर पर हाथ फिराती हैं। फिर, दूसरा बच्चा उतरता है, फिर तीसरा और सबसे अंत में रजत। वह *चिड़ियों की टोली* का मुखिया है। उम्र में सबसे बड़ा है। कुछ सवाल बच्चों से रोज़ पूछे जाते हैं—“होमवर्क मिला, नाश्ता किया, डॉट तो नहीं खाई ? ” शिकायतें शुरू हो जाती हैं। “दादी, आज अणिमा ने मुझे धक्का दिया,” तरला कहती है।

“और तूने जो मेरा कान पकड़ा था। वह भी तो बता,” अणिमा ने मुँह फुलाकर कहा है। नन्हा संतोष चुप है। आज उसकी कॉपी खो गई। दादी यानी रमादेवी हँसती हुई सबको एक-एक थैली पकड़ाती हैं। “अच्छा अब शिकायतें बंद। जाओ, हाथ-मुँह धोकर इसे खाना। आज मैंने तुम्हारी मन-पसंद मिठाई बनाई है। शाम को आना नई कहानी सुनाएँगे तुम्हारे बाबा।”

बच्चों के बाबा हैं रमादेवी के पति अजय सिंह। वह भी एक तरफ खड़े हैंस रहे हैं। बच्चे धम-धम करते, बस्ते झुलाते, एक दूसरे को धकियाते भागते हैं। बस चली जाती है। अजय सिंह के साथ रमादेवी भी अपने फ़्लैट में लौट आती हैं, उनकी *चिड़ियों की टोली* सही-सलामत लौट आई है।

रमादेवी और अजय सिंह एक फ़्लैट में अकेले रहते हैं। उनके दो बेटे हैं—श्यामल और सुरेश। दोनों अपने-अपने परिवार के साथ अमरीका जाकर बस गए हैं। बीच में जब भारत आते हैं तो माता-पिता से एक बार ज़रूर कहते हैं—“यहाँ क्या रखा है? अमरीका चलकर रहिए न।” दोनों मुस्कुड़ाकर चुप रहते हैं—यानी उत्तर साफ़ है कि उन्हें कहीं नहीं जाना। दादी और बाबा *चिड़ियों की टोली* को कैसे छोड़ें! उनका यह मौन उत्तर घर के नौकर बिलासी को भी अच्छा लगता है। आखिर वह कहाँ जाएगा रमादेवी और अजय सिंह के अमरीका जाने के बाद? जिस दिन कहीं न जाने का यह फैसला सुनाया जाता है उस दिन बिलासी शाम को बहुत बढ़िया खाना बनाकर खिलाता है।



एक दिन रमादेवी ने बच्चों के लिए मिठाई बनाई, फिर छोटे-छोटे ग्यारह लिफाफे तैयार किए। हर दिन टॉफी, चॉकलेट, कोई न कोई मिठाई बच्चों को बस से उतरने के बाद देती हैं उनकी दादी। लेकिन तभी उनके पेट में दर्द शुरू हो गया। अजय सिंह तुरंत डाक्टर से दवा लाने चले गए।

एक बजे स्कूल बस मुख्य द्वार के सामने रुकी। रजत ने पुकारा—“दादी, हम आ गए?”

“दादी कहाँ हैं?” नागेश ने इधर-उधर देखते हुए कहा।

“और बाबा भी दिखाई नहीं दे रहे हैं,” तरला ने कहा।

“पता नहीं, क्या बात है?” अणिमा अनामिका से फुसफुसा रही थी।

बच्चे कुछ देर अपार्टमेंट के मुख्य द्वार पर खड़े रहे, फिर धीरे-धीरे दादी के फ्लैट की तरफ बढ़े।

“दादी, क्या बात है?”-रजत की आवाज आई तो रमादेवी झट उठ बैठीं।

“आज आपकी गैरहाजिरी लग गई,” अणिमा बोली।

“दादी, मिठाई !” संतोष जाकर रमादेवी की गोद में चढ़ गया।

“जरा पेट में दर्द हो गया। बस, यूँ ही। तुम्हारे बाबा जल्दी घबरा जाते हैं। झट डाक्टर से दवा लाने चले गए। तुम्हारी मिठाई तैयार है। चलो, पहले बस्ते रखकर हाथ-मुँह धो लो। फिर....”

तभी अजय सिंह हड़बड़ाए से अंदर घुसे, “अब दर्द कैसा है?” देखा रमादेवी बच्चों से घिरी बैठी हैं। हँस रही हैं। वह भी हँस दिए, “तो यह क्यों नहीं कहा कि *चिड़ियों की टोली* को बुला लाओ। मैं डाक्टर के पास न जाकर स्कूल चला जाता।”

“देख रहे हैं न, एक साथ कितने डाक्टर मेरा इलाज कर रहे हैं। दर्द की क्या मजाल जो ठहर सके। कान दबाकर ऐसा भागा... कि...” कहकर रमादेवी जोर से हँस पड़ीं। सचमुच अब दर्द में आराम महसूस हो रहा था।

बिलासी बोला, "बाबूजी, अम्माजी के दर्द की दवा हमें भी पता चल गई है। आप चिंता मत करो।"

एक सप्ताह बाद की बात है। एक दिन सुबह-सुबह रमादेवी चाय पीकर प्याला रसोईघर में रखने गई तो फिर बाहर न आई। अजय सिंह ने जाकर देखा फर्श पर बेहोश पड़ी थीं। तुरंत बिलासी डाक्टर को बुला लाया, लेकिन रमादेवी फिर न उठीं। बच्चों को दोपहर की मिठाई खिलाने से पहले ही सदा के लिए चली गई।

फ्लैट के नीचे लोग आ जुटे। अमरीका टेलीफोन कर दिया गया। लेकिन वहाँ से कोई भी इतनी जल्दी नहीं आ सकता था। तय हुआ कि क्रियाकर्म कर दिया जाए।

एक बजे स्कूल बस आ कर रुकी। रजत ने आने की खबर दी—“दादी, हम आ गए !”

दादी के फ्लैट के नीचे भीड़ जमा थी। रजत ने देख लिया बाबा चुपचाप बैठे थे। ‘दादी कहाँ है?’ वह सोच रहा था।

शाम को बच्चों ने दादी को ‘सदा के लिए’ जाते देखा। वे सब एक झुंड में एक तरफ चुप खड़े थे।

अमरीका से रमादेवी के दोनों बेटे परिवार के साथ आ गए। और भी कई रिश्तेदार आ पहुँचे।

अगली दोपहर बिलासी एक बजे दरवाजे पर खड़ा था। उसे देखते ही बच्चों ने घेर लिया। सब एक साथ पूछने लगे, क्या हुआ था दादी को?

बिलासी ने सब कुछ बता दिया। “और बाबा?” रजत ने पूछा था।

जवाब देने से पहले कुछ देर चुप रहा बिलासी। रजत ने देखा उसकी आँखें डबडबा आई थीं। रुँधे गले से बोला, “बाबू तो एकदम चुप हो गए हैं। किसी से कुछ नहीं बोलते।”

“खाना खाते हैं?” अणिमा ने पूछा।

बिलासी ने सिर हिला दिया। बोला, "सबके कहने पर थाली के सामने बैठ जरूर जाते हैं, पर खाते कुछ नहीं। अनछुई थाली मैं ही तो उठाता हूँ। पता नहीं क्या होगा अब?"

उस शाम रजत ने अपने साथियों को बुलाया और कहा, "हमें एक बार बाबा के पास जरूर जाना चाहिए।"

"मैं कैसे बात करूँगी उनसे? मुझे तो एकदम रोना आ जाएगा", तरला बोली।

"तुमने सुना, बिलासी क्या कह रहा था, बाबा ने खाना-पीना छोड़ दिया है। दादी के सिवा उनका था ही कौन?"

शाम को रजत और बच्चे डरते-डरते सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर पहुँचे, घर में काफी लोग थे, पर बाबा कहीं नजर नहीं आए। बच्चे कुछ देर झिझकते से खड़े रहे, फिर नीचे उतर आए।

तेरहवीं की शाम को सब मेहमान चले गए। अजय सिंह के बेटे श्यामल और सुरेश ने पिता से कहा, "अब यहाँ क्या है आपका? हमारे साथ चलते क्यों नहीं?"

अजय सिंह ने कहा—"सोचकर बताऊँगा।"

बेटे पिता का उत्तर समझ गए और दो दिन बाद वे दोनों अमरीका वापस चले गए। अब अजय सिंह अकेले रह गए थे।

रजत बिलासी से उनके बारे में पूछता रहता था। खुद बिलासी ही आकर बता जाता था कि "आज बाबू ने चाय नहीं पी, खाना भी नहीं खाया। रात को जब-जब आँख खुली उन्हें कमरे में अम्माजी की तसवीर के सामने खड़े पाया, जैसे उनसे बात कर रहे हों।"

स्कूल बस सुबह बच्चों को ले जाती थी, दोपहर में ठीक समय पर छोड़ जाती थी। एक दिन... रजत ने अणिमा से कहा, "ऐसे कैसे रहेंगे बाबा? न खाते हैं, न बोलते हैं। और तो और हम से भी बात नहीं करते!"

“हाँ, पहले तो दादी के साथ दोपहर में रोज़ आकर खड़े होते थे बाहर,” तरला बोली।

एक सुबह बस बच्चों को लेकर ग्लोरी अपार्टमेंट्स से चली तो रजत ने चिल्लाकर कहा—“बाबा, हाँ, मैंने बाबा को देखा था अभी दरवाजे से दूर एक खंभे के पीछे खड़े हुए थे। वहाँ क्या कर रहे थे वह?”

“बाबा, भला वहाँ इस तरह छिपकर क्या करेंगे! कोई और होगा,” अपर्णा बोली।

रजत ने कहा, “मैं क्या बाबा को पहचानता नहीं जो धोखा खा जाऊँ! मैं शर्त लगाकर कह सकता हूँ कि जिन्हें मैंने खंभे की ओट में खड़े हुए देखा था, वह हमारे बाबा ही थे।”

बात किसी की समझ में नहीं आ रही थी। उस दिन स्कूल की आधी छुट्टी में भी इसी बात पर चर्चा होती रही।

“बाबा को भला छिपकर खड़े होने की क्या ज़रूरत है? क्या वह आकर दरवाजे पर खड़े नहीं हो सकते?” अनामिका ने रजत से कहा।

“हमसे बात क्यों नहीं करते?” रमेश बोला।

“अगर यह बात है तो हमने ही उनसे कब बात की है। वह अकेले हो गए हैं, परेशान हैं, पर हम ही उनके पास कितनी बार गए?” रजत ने कहा। उसका गुस्सा सबके साथ-साथ खुद पर भी था।

दोपहर में बस दरवाजे पर रुकी। रजत की तेज नज़र ने बाबा को खंभे की आड़ में खड़े देख लिया था।

अजय सिंह सुबह बच्चों को स्कूल जाते समय और दोपहर में लौटते समय खंभे की ओट में छिपकर देखा करते थे।

अगली सुबह बस घुरघुराती हुई चली गई। खंभे के पीछे खड़े अजय सिंह अन्दर जाने के लिए मुड़े तो सब उनके सामने मौजूद थे, एकटक देखते हुए। बच्चे स्कूल गए ही नहीं थे।

अजय सिंह हड़बड़ा गए। इधर-उधर देखने लगे।

“आज हमने चोरी पकड़ ली,” रजत ने रमेश की तरफ मुड़कर कहा।

“हम भी तो कहें कि हम छिपकर कौन देखता है, सामने क्यों नहीं आता?” अपर्णा बोली थी।

“चोरी...” अजय सिंह के मुँह से बस एक ही शब्द निकल सका। वह कुछ समझ नहीं पा रहे थे।

“हाँ, चोरी, आप क्यों देखते हैं हमें यों छिपकर?”

“मैं तो बस...” अजय सिंह ने कहना चाहा फिर बोले, “लेकिन तुम सब आज स्कूल क्यों नहीं गए? बस तो चली भी गई। क्या बात है?”

“आपको पकड़ने के लिए ही हमने यह योजना बनाई थी, बाबा?” रजत ने कहा।

“हाँ, आप दादी की तरह मेन गेट पर भी तो खड़े हो सकते हैं। यह छिपा-छिपी क्यों?” अनामिका कह रही थी।

“दादी की तरह...?” अजय सिंह की आँखों से आँसू बह चले।

बच्चे उन्हें घेरकर खड़े हो गए। “बाबा, आप रोते क्यों हैं?” नन्हे संतोष ने कहा और उनका हाथ पकड़कर हिलाने लगा। अजय सिंह ने उसे गोद में उठा लिया, उसका सिर सहलाने लगे।

उन पर एक के बाद दूसरा सवाल बरस रहा था। रजत ने कहा, “हमें पता है आप सुबह चाय भी नहीं पीते। रात को कमरे में घूमते रहते हैं...क्यों?” बाबा हैरान! बच्चे सच कह रहे हैं कि चाय छोड़ दी, खाने का मन नहीं करता और रात में नींद भी नहीं आती। पर बच्चों को यह सब कैसे पता? उन्हें क्या मालूम था कि बिलासी उनकी पूरी दिनचर्या का हिसाब बच्चों को बता देता है।

संतोष उनकी गोद में था। बाकी सब उन्हें घेर कर प्लैट की तरफ ले चले। अजय सिंह रह-रहकर इतना भर कह पाते, “अरे यह क्या...रुको, ठहरो तो सही।”

कुछ देर बाद दादी की *चिड़ियों की टोली* बाबा अजय सिंह के साथ बड़े कमरे में बैठी चहचहा रही थी, जहाँ दादी की हँसती हुई तसवीर लगी थी।

थोड़ी देर में अपर्णा अपनी सहेलियों के साथ चाय व नाश्ता बाबा के सामने ले आई।

“और तुम लोग?” बाबा ने पूछा।

“अब दादी तो हैं नहीं जो हमें मिठाई खिलाएँ। आपको मिठाई बनानी नहीं आती तो... चॉकलेट और टॉफ़ियाँ ही दे दीजिए हमें, लेकिन रोज़ देनी होंगी।” रजत मुस्कुरा रहा था।

“कौन कहता है मैं मिठाई बनाना नहीं जानता, कुछ मिठाइयाँ तो तुम्हारी दादी को मैंने ही सिखाई थीं,” कहकर बाबा हँस पड़े।

“तो बनाकर खिलाइए। तभी आपकी बात पर विश्वास होगा।” अपर्णा ने कहा।

रजत बोला, “बाबा, आपको परीक्षा में पास होकर दिखाना होगा। दादी की तरह हर रोज़ हमारे लिए मिठाई का जुगाड़ करना होगा आपको।”

बिलासी एक तरफ़ खड़ा मुस्कुराते हुए कह रहा था—“जरूर, मैं भी तो जानता हूँ, मिठाई बनाना।”

चिड़ियों की टोली चहचहा रही थी। रजत बोला, “बाबा, आप सुबह उठते ही चाय पीकर हमें स्कूल के लिए छोड़ने बाहर आएँगे।” अपर्णा बोली, “दिन में सही समय पर नाश्ता करेंगे।” संतोष बोला, “दोपहर में आप हमें दादी की तरह दरवाज़े पर मिलेंगे।” अणिमा बोली, “दोपहर का भोजन हमारे साथ करेंगे आप।”

“और हाँ, इस तरह खंभे के पीछे छिपकर नहीं देखेंगे।” रजत बोला।

बच्चों की बातें सुन अजय सिंह जोर से हँस पड़े। शायद बहुत दिन बाद पहली बार... “ठीक है, अब ऐसी ग़लती नहीं होगी।”

“बाबा, मान गए... मान गए...,” शोर मचाते, धम् धम् करते बच्चे नीचे उतर गए।

अगली दोपहर स्कूल-बस आकर रुकी तो बस का दरवाजा बाबा ने खोला। चिड़ियों की टोली चहचहा रही थी, “रात को खाना खाया? नींद ठीक से आई?”

बाबा मुस्कुरा उठे, उन्होंने जवाब देने के बदले सवाल दाग दिए, “नाश्ता किया? होमवर्क मिला? डाँट तो नहीं खाई?”

हर बच्चे को लिफाफा थमाते समय बाबा यह कहना नहीं भूले, “मिठाई मैंने अपने हाथों से बनाई है। बिलासी ने मेरी कोई मदद नहीं की।”

दादी गई नहीं थीं, बाबा में लौट आई थीं।



कथई रंग की कार

रश्मि स्वरूप जौहरी

“माँ ! ऑटो रिक्शा लेकर रघुबीर आ गया।”

“लो, ताला लगाओ।”

मैंने ताला लगाया और हम लोग ऑटो में बैठ गए।

आज सुबह से मैं बहुत खुश था। कल ही तो इम्तहान से छुटकारा मिला था। उफ़! पढ़ने में ही दिन रात लगा रहा। सच कहते हैं लोग कि आठवीं कक्षा की पढ़ाई लोहे के चने चबाना है। कल रात जब माँ से मैंने चिड़ियाघर चलने को कहा तो वह झट तैयार हो गई। बोलीं, “रघुबीर से कह आओ। सुबह ऑटो लेकर आ जाएगा।”

रघुबीर पड़ोस में ही रहता है। हम चार बच्चे उसी की रिक्शा से स्कूल जाते हैं।

सुबह अलार्म लगाकर मैं खुद उठ गया था। वैसे माँ दस बार आवाज़ लगाए, प्यार-दुलार करें, तब उठता हूँ। पर आज तो बात ही और थी। सुबह उठकर घर का थोड़ा काम किया, क्योंकि माँ खाना बना रही थी। पिकनिक पर जाओ और पूरी-आलू साथ में न हो तो मजा नहीं आता।

सड़क पर ज़्यादा ट्रैफ़िक नहीं था। रघुबीर आराम से ऑटो चला रहा था और बातें भी करता जा रहा था।

“माँ, तुम्हें सबसे ज़्यादा अच्छा जानवर कौन-सा लगता है?”

“मुझे?” माँ सोचने लगीं, “सफेद बाघ और उसके बच्चे तो बड़े प्यारे लगते हैं।”

“और तुम्हें रघुबीर?”

“तेंदुआ। क्या छल्लाँग लगाता है! और तुम्हें भैया?” उसने पूछा।

“हुक्कू बन्दर। कैसे उछल-उछल कर बोलता है! ‘हुक्कू-हुक्कू-हुक्कू!’” हम सब हँस पड़े।

अचानक एक जोर का धक्का लगा। एक कार हमारे ऑटो से टकरा गई थी। ऑटो रिकशा पलटने लगा और मैं उछलकर फुटपाथ पर गिरा। इतनी जोरों का दर्द हुआ कि मैं चिल्ला पड़ा। लगा हाथ-पैर टूट गए और मैं अपाहिज हो गया। एक-दो मिनट बाद मुझे माँ का खयाल आया। मैंने देखा कि रिकशा पलटा नहीं था। फुटपाथ के सहारे टिका हुआ था। आठ-दस लोग माँ को घेरे हुए थे। उनके माथे से खून बह रहा था। कुछ बातें सुनाई पड़ीं।

पहले मुझे लगा कि मैं उठ नहीं पाऊँगा, पर मैं खड़ा हो गया। मेरे हाथ-पैर सही-सलामत थे।

एक आदमी का सहारा लेकर मैं ऑटो की तरफ लपका। “हटो, हटो। माँ-माँ। क्या हो गया तुम्हें? माँ बोलती क्यों नहीं! तुम ठीक तो हो माँ। रघुबीर-रघुबीर?”

रघुबीर के सिर और हाथ से खून निकल रहा था। कमीज़ फट गई थी।

“घबराओ मत भैया। आपकी माँ बेहोश हो गई हैं। अरे, उस कार वाले को पकड़ो कोई। भाग न जाए।” रघुबीर ने कहा।

“वह भागा नहीं है। कार रोककर इधर ही आ रहा है।” किसी ने कहा। धोती-कुरता पहने एक मोटा आदमी चला आ रहा था। साथ में ड्राइवर था। आगे एक कथई रंग की मोटर कार खड़ी थी। मैं उस पर चिल्लाकर बोला, “देख कर कार नहीं चलाते। दिखाई नहीं पड़ता? मेरी माँ को कुछ हो गया तो!”



उस आदमी ने माँ की नाक के आगे हाथ लगाया—“बस, जरा बेहोश हो गई हैं। तुम्हारी माँ ठीक हैं। अभी अस्पताल ले चलते हैं।” फिर मुड़कर बोला, “ड्राइवर, जल्दी से कार ले आओ।”

“डाक्टर वर्मा के पास चलो” मैंने कहा।

डाक्टर वर्मा की क्लीनिक, कॉलोनी के पास ही थी।

कार जैसे ही आई मैंने हथेली पर कार का नम्बर लिख लिया। मैं माँ के साथ पीछे बैठा था। उनका सिर मैंने गोद में रख लिया था।

माथे से खून निकलना बंद हो गया था। आँख के पास थोड़ी सी चोट थी। मैं माँ का माथा सहला रहा था।

क्लीनिक पहुँचकर मैं सीधे डाक्टर वर्मा के कमरे में घुस गया। "डाक्टर साहब, माँ का एक्सीडेंट हो गया है" फिर नर्स से कहा "सिस्टर, स्ट्रेचर।" माँ को लेकर नर्स 'इमरजेंसी' में चली गई। मैंने डाक्टर वर्मा को जल्दी से एक्सीडेंट के बारे में बताया।

"अरे, यह तो पुलिस केंस है। उनको रोके रखना।" और डाक्टर वर्मा 'इमरजेंसी' में चले गए।

मैं भागा-भागा बाहर आया। वह आदमी और उसका ड्राइवर कहीं नजर न आए। तभी रघुबीर आ गया। वह किसी के स्कूटर पर था। "मेरा रिक्शा तो टूट गया है, चलने लायक नहीं रहा।"

मैंने रघुबीर से कहा, "वह कार वाला आदमी पता नहीं कहाँ चला गया। मुझसे कह रहा था कि कार पार्क करके अभी आता हूँ। जरा देखना।" रघुबीर ने बाहर जाकर देखा, 'अरे! भाग गया। कैसा आदमी है!'

हम दोनों 'इमरजेंसी' के बाहर खड़े हो गए। तभी डाक्टर वर्मा आ गए। 'घबराओ मत बेटा। जरा बेहोश हो गई थीं तुम्हारी मम्मी। अब ठीक हैं। हाथ में दर्द बता रही हैं। 'एक्सरे' करना होगा। हाँ, वे कार वाले कहाँ हैं?

"वे तो भाग गए," मैंने बताया।

"भाग गए, कार का नम्बर नोट किया है?"

"हाँ", मैंने उन्हें हथेली दिखाई। डाक्टर वर्मा ने पुलिस को फोन किया।

थोड़ी देर में पुलिस आ गई। उन्होंने डाक्टर वर्मा, माँ, रघुबीर और मेरे बयान लिए। गाड़ी का नम्बर नोट किया। गाड़ी के मालिक और ड्राइवर का हुलिया भी पूछा। रघुबीर के साथ जाकर ऑटो को भी देखा।

‘एक्सरे’ से पता लगा कि माँ के बाएँ हाथ की हड्डी टूट गई थी। प्लास्टर चढ़वाकर हम घर आ गए।

“माँ, रात में पापा को फोन कर दूँगा,” मैंने कहा।

“नहीं-नहीं। वह बेकार परेशान हो जाएँगे। फिर तीन हफ्ते में तो प्लास्टर कट ही जाएगा।” पापा जापान गए हुए थे। अभी उन्हें वापस आने में चार महीने बाकी थे। “ठीक है पापा जब आएँगे तो उन्हें बताऊँगा कि मैंने कैसे मोटर वाले को पकड़वाया। भगोड़ा कहीं का।” अचानक मुझे ख्याल आया कि अगर एक्सीडेंट न हुआ होता तो इस समय हम लोग चिड़ियाघर में होते और आलू-पूरी खा रहे होते।

आलू-पूरी की याद से, मुझे सचमुच भूख लग आई। पर अब हम लोग खाएँगे क्या? खाना तो रास्ते में बिखर गया था और माँ के हाथ पर प्लास्टर चढ़ा है, पर मुझे चाय बनानी आती थी। मैंने चाय और सैंडविच बनाए। माँ को खिलाए और खुद भी खाए।

दो दिन बाद, रघुबीर और मैं पुलिस चौकी पर गए। पर तब तक कार के मालिक का पता नहीं चल पाया था।

एक हफ्ते बाद दो पुलिस वाले घर आए। मम्मी का हाल पूछने के बाद कहने लगे, “देखिए मैडम, कार और उसके मालिक का पता चल गया है। पर मालिक तो उन दिनों शहर से बाहर गए हुए थे और जिस दिन एक्सीडेंट हुआ था कार उस दिन ‘सर्विसिंग’ के लिए वर्कशाप गई हुई थी। लगता है, कार का नम्बर आप लोगों ने गलत नोट कर लिया था।”

“पर नम्बर तो मैंने सही नोट किया था,” मैं बोल पड़ा।

“नहीं बेटे, नम्बर सही नहीं था। मैंने मोटर मैकेनिक से भी पूछताछ कर ली है। वह कार उस दिन ड्राइवर के साथ मैकेनिक के ही पास थी।” और वे यह कहकर चले गए कि पुलिस ‘केस’ बंद कर रही है, क्योंकि जिस कार ने टक्कर मारी थी, उसका पता ही नहीं चला था।

मुझे बहुत गुस्सा आया। "माँ ये लोग गलत कह रहे हैं। कार का नम्बर ठीक था।"

मैं डाक्टर वर्मा के पास गया।

डाक्टर वर्मा को मैंने जब केस बंद होने की बात बताई तो वह बोले, "हो सकता है, घबराहट में गाड़ी का नम्बर ग़लत नोट कर लिया हो। चलो, तुम सब बच गए यही क्या कम है!"

पर मैं बहुत दुखी था। ड्राइवर ने टक्कर मारी, माँ का हाथ टूटा, रघुबीर का नुकसान हुआ, और वे लोग मर्ज़े मार रहे हैं! चलो माना, टक्कर तो ग़लती से हो गई, पर वे लोग भाग क्यों गए? एकसीडेंट करके भागना तो अपराध है। इसकी सजा तो उन्हें मिलनी ही चाहिए।

एकसीडेंट हुए एक महीना हो गया था। मैं अपनी पढ़ाई में लग गया था, पर मोटर वाले तथा उसके ड्राइवर और कत्थई रंग की कार को भूल नहीं पाया था। मोटर का नम्बर भी मेरे पास लिखा था। ट्रैफिक में हरदम उस कार को ढूँढ़ता रहता था।

एक रात मैं टी वी देख रहा था कि अचानक वह मोटर मालिक, परदे पर दिखाई पड़ा। फूलमालाओं से लदा हुआ था। झुग्गी-झोपड़ी में एक स्कूल का उद्घाटन कर रहा था। मैं चिल्लाया, "माँ-माँ। यह देखो, यही है। जल्दी आओ।" तुम भी देख लो। तुमने तो उसे देखा नहीं था। पर जब तक माँ आई, वह तसवीर हट चुकी थी।

"कोई बड़ा आदमी लग रहा था माँ। इसीलिए तो हवलदार ने उसे नहीं पकड़ा।"

"हो सकता है।"

अगली सुबह अखबार देखा तो मैं उछल पड़ा। "माँ! यह देखो कल की टी वी वाली ख़बर छपी है। उसी की तसवीर है। इनका नाम है श्री अमर बिहारी टंडन।"

माँ अखबार देखने लगीं। मैं रघुबीर को बुला लाया।

“यही है। हूबहू यही है।” फिर कुछ सोचकर बोला, “तभी हवलदार ने छोड़ दिया। चलो अखबार लेकर थाने चलते हैं।”

“मेरे एक दोस्त अनिल की मम्मी पत्रकार हैं, उनसे कहूँगा। वह पता कर देंगी।”

और मेरी खुशी का ठिकाना न रहा, जब, अनिल की मम्मी ने मुझे वह अखबार दिया, जिसमें खबर छपी थी कि एकसीडेंट वाले दिन टंडन साहब एक झोंपड़-पट्टी में कम्बल बाँटने गए थे। साथ में एक फोटो भी था जिसमें वह कार के पास खड़े हुए कम्बल दे रहे थे। वही कार थी कथई रंग की। उसकी नम्बर प्लेट साफ नजर आ रही थी।

हम लोग डाक्टर वर्मा से मिले। वह पुलिस स्टेशन जाने को तैयार हो गए। मैं व डाक्टर वर्मा पुलिस अधिकारी से मिले। उन्हें पूरी घटना बताई। अखबार दिखाया। अधिकारी ने केस की फाइल मंगाई। उसे देखा। “आप लोग ठीक कह रहे हैं। इतने बड़े आदमी के खिलाफ कार्रवाई करने की हिम्मत हवलदार नहीं कर पाया। उसकी भी कार्रवाई होगी, यह केस मैं खुद देखूँगा। दोषी को सजा मिलनी जरूरी है। चाहे वह कोई भी क्यों न हो।” फिर मुझसे बोले, “तुम्हें वाकई शाबाशी मिलनी चाहिए!” और उन्होंने मुझे एक पैन इनाम में दिया।

दो दिन बाद पुलिस अधिकारी ने हम लोगों को थाने बुलवाया। वहाँ अमर बिहारी टंडन अपने ड्राइवर के साथ पहले से ही विराजमान थे। कुछ शर्मिन्दा से लग रहे थे।

पुलिस अधिकारी ने हमें टंडन साहब से मिलवाया। टंडन साहब ने बड़ी नम्रता से हाथ जोड़कर माँ को नमस्ते की और बोले, “बहन जी उस दिन के लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। आप जो भी कहें मैं करने को तैयार हूँ।”

माँ बोलीं, “भाई साहब, आपने गलती स्वीकार कर ली, अब गलती गलती नहीं रह गई। हाँ, आप रिक्शेवाले के नुकसान का हरजाना जरूर भर दें।”

“बहन जी! उसके नुकसान का हरजाना जितना भी आप कहेंगी मैं उसको दे दूँगा। टंडन साहब ने मेरी तरफ़ देखकर कहा, “भई वाह, बेटा हो तो तुम्हारी तरह!”

मेरी कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था, फिर मैंने सोचकर कहा, “अंकल आप आगे से ऐसा कभी न करें।” टंडन साहब मेरे दोनों हाथ अपने हाथों में थामकर बोले, “वादा करता हूँ बेटे!” फिर माँ से बोले, “बहन जी आपको कभी भी कोई ज़रूरत हो, मुझे याद रखें।” उन्होंने जेब से अपने नाम व पते वाला कार्ड माँ को पकड़ा दिया।

टंडन साहब ने पुलिस अधिकारी को धन्यवाद दिया। मैंने भी कहा, “सर, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद।”

टंडन साहब ने अपनी कार पर हमें घर पहुँचाया और माँ ने उन्हें चाय पिलाई।



केन्तो

नीलिमा झा

मिली नाक-भौं चढ़ाए बैठी थी, "पता नहीं क्यों मम्मी मुझे अरुणाचल के इस गाँव में घसीट लाई हैं। यहाँ आखिर है क्या? कुछ भी तो नहीं!" वह गुस्से में बड़बड़ाई।

"चलो मिली, जीप से उतरो। केन्तो हमारी प्रतीक्षा कर रही है।" उसकी मम्मी ने कहा।

अपना छोटा-सा पॉकेट ट्रांजिस्टर सीट पर ही छोड़ कर, मिली धीरे से नीचे उतरी, "तुम हो केन्तो?" उसने रुखेपन से पूछा।

केन्तो धूल भरी धारीदार गाले (ब्लाउज़ और आधी लुंगी) पहने एक पाँव पर खड़ी थी और दूसरे पाँव के अंगूठे से ज़मीन खुरच रही थी। उसने लजाते हुए मिली की ओर देखा और अपना सिर हिलाया, तो उसके गले में पड़ी मनकों की लड़ियाँ बज उठीं।

मिली ने उसे घूर कर देखा और फिर कमर तक लम्बे अपने बालों को झटकते हुए मुड़ी, "मम्मी, यह तो बिलकुल गंवार है, मैं इससे क्या बात करूँगी?" वह अंग्रेज़ी में फुसफुसाई।

"बस, बहुत हुआ!" उसकी मम्मी ने तीखे स्वर में कहा। "केन्तो, यह मिली है" उन्होंने आगे बढ़कर परिचय करवाया।

केन्तो अपने मुँह और चपटी नाक पर हाथ रखकर "खी खी खी" करती हँसने लगी।

“एकदम मैनर्स नहीं हैं इसे,” मिली ने सोचा। फिर झुंझलाकर पूछा, “मम्मी हमें कितनी दूर पैदल जाना होगा?”

इससे पहले कि उसकी मम्मी कुछ कह पातीं केन्तो ने उसका हाथ पकड़ लिया और मुस्कुराती हुई बोली, “चलो, गाँव बहुत दूर नहीं है।”

मिली ने अपना हाथ छुड़ा लिया और उसके साथ बेमन से चलने लगी। सोचने लगी ‘कितना अच्छा होता अगर इस समय मैं अपनी सहेलियों के साथ होती। इस केन्तो के साथ मैं क्या करूँगी!’ उसे बहुत गुस्सा आ रहा था।

“देखो, हम गाँव में पहुँच गए,” मम्मी की आवाज आई।

मिली ने देखा, गाँव पहाड़ के एक छोर पर बसा हुआ था। चारों तरफ से हँसने-बोलने की आवाजें आ रही थीं। जब और नज़दीक पहुँची तो देखा गाँव वाले एक दूसरे के पीछे भाग रहे हैं। उनके चेहरों और बदन पर कोई सफ़ेद चीज़ पुती हुई थी।

“यह क्या हो रहा है?” मिली ने उत्सुक स्वर से केन्तो से पूछा फिर झेंप गई।

“आज मोपिन का त्योहार है। इसमें हम एक दूसरे को चावल के आटे का घोल लगाते हैं।” केन्तो ने हँसते हुए बताया।

‘यह तो एकदम होली की तरह है’—मिली सोच रही थी। तभी अचानक केन्तो चावल का वही घोल उसे लगाने लगी। मिली ने अपना चेहरा ढँकने का प्रयास किया लेकिन बेकार। मिली चिढ़ गई। उसने शिकायत भरी नज़रों से अपनी मम्मी को देखा, पर देखते ही मम्मी हँस दीं। चावल के घोल से पुता उसका चेहरा भी अनोखा लग रहा था।

मिली ने ढोल की आवाज सुनी। उसने देखा लड़कियाँ और औरतें एक-दूसरे के हाथ पकड़े हुए नाच-गा रही थीं।

“चलो, हम लोग भी नाचें,” केन्तो ने उछलकर कहा।

“नहीं! नहीं! मुझे नाचना नहीं आता,” मिली घबराकर बोली, पर कुछ औरतें उसे खींच ले गईं। मिली ने नाच की लय से अपने कदम मिलाने चाहे पर कभी उसके पैर कहीं पड़ते तो कभी कहीं। गाँव वाले हँस रहे थे और उनकी प्यार भरी नजरें मानो कह रही थीं, ‘अरे, तुम नाचना भी नहीं जानती?’

मिली को बहुत बुरा लगा। ‘मैं इन्हें गंवार समझ रही थीं, पर इनकी नजरों में मैं गंवार हूँ।’ उसने सोचा। नृत्य रुकने पर मिली की मम्मी ने कहा, “केन्तो, मिली को आस-पास की जगह दिखाओ, तब तक मैं गाँव वालों से बात करती हूँ।”

केन्तो का गोल चेहरा और छोटी-छोटी अधर खुली आँखें चमक उठीं।

“काकेन, यहाँ आओ”, उसने एक लड़के को बुलाया और जल्दी-जल्दी उससे कुछ कहा, जिसे मिली समझ न सकी। वह लड़का दौड़कर गया और कुछ देर बाद बांस की एक टोकरी लिए लौटा, जिसमें तीर और धनुष रखे थे।

“चलो,” कहते हुए केन्तो ने उस टोकरी को पीठ पर लटका लिया।

मिली साथ-साथ चलने लगी। उसने देखा, ज़मीन में गड़े लकड़ी के खम्भों पर टिके हुए फूस के घर पहाड़ियों की अलग-अलग सतहों पर बने हैं। इन घरों के नीचे खूंटों से बँधे जानवरों की आवाज़ें भी सुनाई पड़ रही थीं।

“केन्तो”, किसी ने पुकारा। मिली ने देखा एक बूढ़ी औरत छोटे बच्चे को पीठ पर बँधे दाव से घास काट रही थी। “कहाँ जा रही हो इस लड़की के साथ?” उसने पूछा फिर बिना रुके हाथ हिलाकर बोली, “दूर मत जाना।”

“हाँ! हाँ ठीक है दादी।” केन्तो ने जवाब दिया। कुछ दूर चलने के बाद वे दोनों नदी के पास जा पहुँची। केन्तो दौड़ कर पानी में घुस गई और हाथों से पानी उछालने लगी।

मिली का मन हुआ कि वह भी पानी में खेले, पर उसे डर लग रहा था। उसने देखा केन्तो अपने तीर से पानी में निशाना लगा रही है।

“यह तुम क्या कर रही हो?” मिली ने पूछा। उसने देखा केन्तो ने तीर पानी में छोड़ दिया।

“पकड़ लिया” केन्तो चिल्लाई, “देखो, तुम्हारे लिए मैंने मछली का शिकार किया है।”

मिली आश्चर्य से देखती रही।

केन्तो खिलखिला रही थी।

‘इसके साथ तो बड़ा मजा आ रहा है,’ मिली ने सोचा। तभी उसकी नज़र पहाड़ों और जंगल पर घूम गई। “केन्तो, मैं जंगल भी देखना चाहती हूँ।”

“नहीं, अब वापस चलते हैं,” केन्तो ने कुछ घबराकर कहा।

“जब इतनी दूर आ गए हैं, तो मैं जंगल देखे बिना नहीं जाऊँगी।” मिली ने जिद की।

“लेकिन हम जंगल में बहुत अन्दर तक नहीं जाएँगे,” केन्तो ने चेतावनी भरे स्वर में कहा।

“ठीक है,” मिली खुश हो गई।

केन्तो ने नदी-किनारे वाला रास्ता पकड़ लिया। बाईं ओर घना जंगल था। मिली जंगल की सुन्दरता को देखती केन्तो के पीछे-पीछे चल रही थी। पैरों के नीचे सूखे पत्तों और टहनियों की खरखराहट से पक्षी उड़ जाते। मिली को सब कुछ बहुत अच्छा, नया-नया लग रहा था। अचानक मिली ने देखा केन्तो एकदम रुक गई है और इशारे से उसे चुप रहने को कह रही है।

“सुनो”, केन्तो ने दूर से आ रही एक आवाज़ की ओर मिली का ध्यान आकर्षित करते हुए धीरे से कहा।

मिली का दिल ज़ोरों से धड़कने लगा। 'क्या हो सकता है?' उसने सोचा।

"जंगली सूअर है।" केन्तो की तेज आवाज आई।

मिली ने देखा कि एक जानवर तेजी से दौड़ता हुआ उन्हीं की ओर आ रहा था।



मिली डर से चीखने लगी।

“भागो! भागो,” केन्तो चिल्लाई और उसने मिली को एक तरफ धकेल दिया। मिली गिर पड़ी। वह हिल भी न सकी।

‘अब हम नहीं बच पाएँगे।’ उसने देखा कि केन्तो जंगली सूअर के सामने तनकर खड़ी है और उस पर तीर का निशाना साध रही है। पर वह आगे ही बढ़ता आ रहा है, क्रोध से घुरघुरा रहा है।

मिली थर-थर काँपने लगी। उसने चीखना चाहा पर आवाज जैसे गले में फँस गई थी।

मिली ने तीर चलने की आवाज़ सुनी और साथ ही उस जानवर की कराह भी। उसने देखा कि सूअर घायल होने पर भी गुस्से से सिर उठाए केन्तो पर झपटने की कोशिश कर रहा है।

“केन्तो! केन्तो!” मिली ज़ोर-ज़ोर से पुकार रही थी।

केन्तो तेज़ी से एक तरफ कुछ दूर हटकर अब भी तीर चलाए जा रही थी। एक तीर ठीक जानवर के माथे के बीचोंबीच जा लगा। जंगली सूअर धम्म से ज़मीन पर गिर पड़ा।

“मिली, भागो!” कहते हुए केन्तो ने मिली को खींचा और फिर दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़कर दौड़ने लगीं।

दोनों जब गाँव पहुँचीं तो हॉफ रही थीं।

“मिली, क्या बात है?” उसकी मम्मी ने घबराकर पूछा। वह दोनों को बारी-बारी से देख रही थीं।

“एक जंगली सूअर ने हम पर हमला कर दिया था। केन्तो ने उसे मार दिया।” सूखे होठों पर जीभ फिराती हुई मिली बोली।

“क्या?” मिली की मम्मी ने कहा।

मिली एक साँस में पूरी घटना बता गई।

“केन्तो बहुत बहादुर है मम्मी,” मिली ने कहा।

“हाँ, मैं जानती हूँ, इसीलिए तो मैं तुम्हें इससे मिलवाना चाहती थी।” मिली की मम्मी केन्तो को प्यार करती हुई बोली। केन्तो शरमा गई।

“केन्तो, मैं अपने शुरू के व्यवहार के लिए माफ़ी माँगती हूँ”, मिली झिझकते हुए बोली, “मैं तुम्हारी दोस्त बनना चाहती हूँ। क्या तुम मुझे अपनी दोस्त बनाओगी?”

“मैं तो पहले से ही तुम्हारी दोस्त हूँ”, कहकर केन्तो मुस्कुराई।

“मैं अभी आई”, कहती हुई मिली जीप की ओर दौड़ गई। वहाँ से अपना ट्रांजिस्टर लेकर लौटी। “मेरी तरफ से छोटा-सा उपहार”, उसने कहा।

“यह तो बहुत प्यारा है”, केन्तो उछल पड़ी। फिर अपना हाथ मिली के हाथ में दते हुए कहा, “लेकिन मुझे सब से अच्छी बात यह लगी कि तुम मेरी दोस्त बनना चाहती हो।” वह मुस्कुरा रही थी। □□

दादी

गिरिजा रानी अस्थाना

"दादी मुझे बहुत अच्छी लगती हैं," संजय अपने मित्र जॉन से बोला। "जब से भारत से आई हैं, घर में रौनक आ गई है। खाना तो इतना बढ़िया बनाती हैं कि उंगलियाँ चाटते रह जाओ। और मज़ा यह है कि साथ में चूरन भी देती हैं कि जो कुछ खाओ सब हज़म भी हो जाए।"

"हमें भी तो मिलवाओ अपनी दादी से। बस, रोज़-रोज़ उनके बारे में बताकर ही रह जाते हो।" जॉन बोला।

"हमें भी उनके हाथ का बना बढ़िया भारतीय खाना खिलवाओ," जॉन की छोटी बहन मेरी बोली। "तुमसे उनके बारे में सुन-सुनकर हम तो उतावले हो रहे हैं, उनसे मिलने के लिए।"

"चाहता तो मैं भी हूँ कि तुम लोग दादी से मिलो, पर क्या बताऊँ! वह किसी के सामने आती ही नहीं। असल में वह पहली बार इंग्लैंड आई हैं न।" संजय बोला।

"क्या उन्हें अंग्रेज़ी बोलने में मुश्किल होती है?"

"नहीं, नहीं। रुक-रुककर अंग्रेज़ी में अपनी बात कह लेती हैं। समझ भी लेती हैं लेकिन किसी के सामने बोलने से हिचकिचाती हैं कि लोग हँसेंगे।"

"अगर वह हमारी बात समझ सकती हैं तो इतना काफी है। बाकी तुम दुभाषिए तो हो ही। चलो हम आज ही उनके पास चलते हैं।" मेरी उतावली से बोली। सब लोग संजय के घर की तरफ मुड़ गए।

दादी संजय की प्रतीक्षा कर रहीं थीं। संजय को देखते ही दादी का चेहरा खिल उठा।

“दादी, आज क्या है खाने में?” घर में घुसते ही संजय ने दादी के गले में बाँहें डालते हुए पूछा।

“तेरी मनपसंद मटर की कचौड़ियाँ, दमआलू और खीर।” दादी उत्साह से बोलीं। तभी उनकी नज़र जॉन और मेरी पर पड़ी और वह एकदम चुप हो गईं।

“ओह दादी। ये मेरे मित्र हैं। यह है जॉन, मेरी कक्षा में पढ़ता है और यह उसकी बहन मेरी, हमसे एक कक्षा नीचे। इनकी मम्मी हमारे स्कूल की मुख्याध्यापिका हैं।” संजय ने जॉन और मेरी का परिचय कराया।

“हलो दादी,” दोनों ने दादी का अभिवादन किया। जवाब में दादी मुँह ही मुँह में कुछ बुदबुदाई, जो किसी को सुनाई नहीं दिया।

“दादी, जॉन और मेरी आपके हाथ का बना खाना खाने आए हैं,” संजय बोला।

“ठीक है। हाथ-मुँह धोकर आ जाओ,” दादी खाने की मेज़ लगाने लगीं। सब लोग खाना खाने बैठ गए और दादी प्यार से खिलाने लगीं, लेकिन बोलीं कुछ नहीं। जॉन और मेरी ने बहुत चाहा दादी से बातचीत करें लेकिन असफल रहे।

दादी या तो बुदबुदा कर उत्तर देतीं जो किसी को सुनाई न देता, या फिर मुस्करा भर देतीं। बल्कि अधिकतर समय बस मुस्कराती ही रहीं। फिर थोड़ी देर बाद अपने कमरे में चली गईं।

“कितनी अच्छी हैं तुम्हारी दादी,” जॉन बोला।

“और उनकी साड़ी तो देखो, कितनी सुन्दर है,” मेरी ने कहा।

“यह साड़ी भी एक समस्या है।”

“क्यों?”

“जब शाम को मैं कहता हूँ दादी पार्क में चलिए, आपका मन बहलेगा, तो मना कर देती हैं। उन्हें लगता है कि साड़ी देखकर लोग उन पर हँसेंगे। यहाँ कोई साड़ी जो नहीं पहनता न इसलिए।” संजय ने कहा।

“काश, तुम्हारी दादी हमसे बातें करतीं। मुझे उनसे कितनी बातें पूछनी हैं, भारत के बारे में... भारत के त्योहार, भारत की लोक-कथाएँ। मुझे पक्का विश्वास है कि उन्हें बहुत-सी कहानियाँ आती होंगी।” मेरी बोली।

“खजाना है लोक-कथाओं का उनके पास,” संजय ने बताया। थोड़ी देर में वे चलने लगे तो संजय को जैसे अचानक कोई बात याद आ गई। वह बोला, “थोड़ा ठहरो।” फिर दादी के कमरे में चला गया। दादी से कहा, “दादी, चूरन तो दो। मैं जॉन और मेरी को भी दूँगा।”

“नहीं, नहीं, उन्हें मत देना। ये अंग्रेज़ बच्चे हैं कहीं बीमार न हो जाएँ।” संजय को चूरन देती हुई दादी बोलीं।

“अरे जब मैं बीमार नहीं होता तो वे क्यों होंगे? मैं भी तो यहीं जन्मा और बड़ा हुआ हूँ।”



“फिर भी,” कहती हुई दादी पीछे-पीछे आने लगीं, फिर रुक गई।

“संजय ने थोड़ा-थोड़ा चूरन जॉन और मेरी को भी दिया। मेरी ने थोड़ा-सा चूरन जीभ पर रखा, फिर थोड़ा और, फिर सारा मुँह में रख लिया, “वाह! बड़ा मजेदार है यह तो।” मेरी की देखादेखी जॉन ने भी चूरन मुँह में डाल लिया और चटखारे लेकर खाने लगा।

“दादी, चूरन बहुत मजेदार है,” दोनों ने चिल्लाकर कहा और बाहर निकल आए।

शाम को संजय दादी के साथ बैठा भारत के किस्से सुन रहा था कि दरवाजे की घंटी बजी। संजय ने उठकर दरवाज़ा खोला। सामने जॉन था। दादी को देखकर बोला, “दादी, आपकी दवा तो जादुई है। सारा खाना हज़म और भूख फिर से लग आई है।”

दादी ने धीरे से ‘थैंक्यू’ कहा और अपने कमरे में चली गई।

“संजय, तुम अपनी दादी को स्कूल में ले आओ न। वह बच्चों को भारतीय सभ्यता, संस्कृति आदि के बारे में कितना कुछ बता सकती हैं।”

“तुम जानते हो, मुझे इससे कितनी खुशी होगी अगर वह मेरे स्कूल चलें। कितनी बार तो कह चुका हूँ। मैं बार-बार कहता हूँ दादी मैं आपकी बात सबको समझाऊँगा। आप एक बार चलें तो सही, पर...”

ऐसे ही कुछ दिन और बीते। जॉन और मेरी अक्सर संजय के घर आते। दादी के पास बैठते और कोशिश करते कि उनसे बातचीत करें। अब दादी जॉन और मेरी के पास बैठने लगीं थीं लेकिन बोलतीं फिर भी न थीं।

एक शाम जॉन, मेरी और संजय पार्क में क्रिकेट खेल रहे थे। उनके साथ मेरी का छोटा-सा कुत्ता टॉम भी था। वह भी उनके साथ दौड़ रहा था। यदि गेंद दूर चली जाती तो वह दौड़कर उठा लाता और फिर मुँह में दबा कर सारे पार्क में दौड़ने लगता। उसके पीछे जॉन, मेरी और संजय भी दौड़ते।

खेल बड़े जोरों से चल रहा था कि अचानक टॉम के किकियाने की आवाज़ आई। तीनों दौड़कर उसके पास पहुँचे। उन्होंने एक लड़के को भागते हुए देखा। टॉम दर्द से बिलबिला रहा था। उसके बाएँ पंजे से खून बह रहा था। लगता था भागते हुए लड़के ने उस पर पत्थर फेंका था, जिससे टॉम को चोट लग गई थी। वह लंगड़ा रहा था।

“ओह! टॉम! टॉम...,” मेरी ने टॉम को गोद में उठा लिया। टॉम कें कें किए जा रहा था।

“इसके तो खून बह रहा है,” जॉन बोला, “चलो, जल्दी से जानवरों के दवाखाने ले जाते हैं।”

वे चलने लगे, तभी संजय बोला, “लेकिन आज तो शनिवार है। दवाखाना तो आज आधे दिन के लिए ही खुलता है।

“ओह अब क्या करें? माँ और पिताजी भी नहीं हैं जो इसे दूसरे डाक्टर के पास ले जाते,” मेरी बोली।

संजय ने कुछ सोचा, फिर अचानक बोल पड़ा, “चलो, मेरे घर चलो।”

“वहाँ जाकर क्या होगा?” जॉन ने पूछा।

“दादी इसकी मरहम-पट्टी कर देंगी और दवा भी लगा देंगी।”

“तुम्हारी दादी! क्या वह जानवरों का भी इलाज कर लेती हैं?” जॉन को विश्वास नहीं हो रहा था।

“तुम चलो तो। भारत में तो हमारे घर में पूरा चिड़ियाघर है। गाय, भैंस, बकरी, कुत्ता, बिल्ली और दर्जनों चिड़ियाँ। दादी ही सबका इलाज कर लेती हैं।”

“तब तो जल्दी से चलो।” कहते हुए मेरी टॉम को गोद में लिए संजय के घर की तरफ चल दी।

घर पहुँचने पर जैसे ही दादी ने दरवाज़ा खोला, संजय बोला, “दादी टॉम को चोट लग गई है। जल्दी से घाव पर दवा लगाकर मरहम-पट्टी कर दो।”

“मैं...मैं...मरहम-पट्टी कर दूँ? तेरा दिमाग तो ठीक है? मैं इस कुत्ते को देसी दवा लगाकर पट्टी बाँध दूँ तो जॉन के माँ-बाप जाने क्या कह बैठें।”

“तुम यह सब छोड़ो कि वे क्या कहेंगे। बस, तुम तो पट्टी कर दो।”

तभी मेरी टॉम को लेकर अंदर घुसी। टॉम अभी तक कें कें कें कर रहा था। जब दादी ने टॉम को देखा तो सारी हिचकिचाहट भूल गई। उन्होंने मेरी से स्पष्ट स्वर में कहा, “आओ, मेरे साथ।”

सब लोग दादी के पीछे-पीछे हो लिए। दादी ने पहले टॉम का घाव धोया फिर उसे साफ़ तौलिये से पोंछा। साथ-साथ वह मेरी को निर्देश भी देती जा रही थीं। फिर रसोई में जाकर हल्दी और तेल मिलाकर गरम पुल्टिस बनाई। पुल्टिस जखम पर रखकर, पट्टी बाँध दी। गरम पुल्टिस रखने से टॉम को आराम हुआ और उसका किंकिंयाना कुछ कम हो गया।

अब दादी गरम दूध में थोड़ी-सी हल्दी मिलाकर ले आई। मेरी ने दूध धीरे-धीरे टॉम को पिला दिया।

संजय और जॉन अचरज से देख रहे थे कि वही दादी, जो हमेशा चुप रहती थीं, किस तरह रुक-रुककर धीरे-धीरे अंग्रेज़ी में मेरी को निर्देश दे रही थीं। थोड़ी देर में जॉन और मेरी टॉम को लेकर चले गए।

दूसरे दिन सुबह नौ बजे दरवाजे की घंटी बजी। सामने जॉन और उसकी माँ खड़े थे।

“ओह आंटी, आइए, टॉम कैसा है?” संजय ने पूछा।

“टॉम बिलकुल ठीक है। मुझे तुम्हारी दादी से मिलना है।” जॉन की माँ ने कहा।

संजय दादी को बुलाने उनके कमरे में गया। दादी कुर्सी पर बैठी किताब पढ़ रही थीं।

“चलो दादी, जॉन की माँ तुमसे मिलना चाहती हैं।”

जॉन की माँ ने देखते ही दादी का हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया और बोलीं, “हम आपके बड़े आभारी हैं। आपने टॉम की मरहम-पट्टी न की होती तो उसकी हालत खराब हो जाती। आपकी दवा से उसका आधा ज़ख्म अभी ही ठीक हो गया है। आपने क्या दवा लगाई थी?”

दादी जॉन की माँ का मुँह देखती रह गई।

“बताइए न आपने क्या दवा लगाई थी?” जॉन की माँ ने फिर पूछा।

दादी कुर्सी पर बैठ गई और धीरे-धीरे जॉन की माँ को हल्दी के बारे में बताने लगीं। फिर तो जॉन की माँ पूछती गई और दादी बताती गई। दादी की हिचकिचाहट धीरे-धीरे न जाने कहाँ खो गई! बातों का सिलसिला ऐसा जमा कि बहुत व्यस्त रहने वाली जॉन की माँ पूरे एक घंटे तक बैठी रहीं और दादी उन्हें घरेलू नुस्खों के बारे में बताती रहीं।

अंत में जॉन की माँ बोलीं, “दादी, आप बच्चों के स्कूल में आइए और अपने इस खजाने के बारे में सबको बताइए। इतना सारा ज्ञान आपके पास है। इसका लाभ सबको मिलना चाहिए।” फिर संजय से बोलीं, “संजय, तुम अपनी दादी को स्कूल ज़रूर लाना और हाँ इसी सुन्दर साड़ी में।”

“अवश्य आंटी।”

जब जॉन और उसकी माँ चले गए तो संजय दादी से बोला, “दादी, चलोगी न मेरे स्कूल साड़ी पहनकर?” वह शरारत से मुस्करा रहा था।

“हाँ!” दादी ने हँसकर कहा।

आज संजय बहुत खुश था।



अपने रंग

मधुलिका

पिछले जाइँ की ही तो बात थी। बस दो दिन तेज़ बुखार आया था माँ को। अस्पताल ले जाते समय बाबा बोले थे—“जल्दी ही ठीक होकर वापस आ जाएगी तुम्हारी माँ।” पर माँ तो वापस न आई। वहीं दम तोड़ दिया था उन्होंने। तब से प्रेमा ने ही संभाल रखा था सारा घर।

जब कभी बाबा को किसी बच्चे के जन्मदिन की पार्टी का ठेका मिलता, प्रेमा भी जाती उनके साथ। बाबा तरह-तरह के जादू के खेल दिखा चुकते, तो प्रेमा की बारी आती। वह सिर पर गेंद टिका, हाथ फैला, तरह-तरह से घूम कर दिखाती। गेंद को नीचे कभी न गिरने देती। बाबा के साथ रोज़ रियाज़ जो करती थी इसका। कभी-कभी बाबा से कहती, “बाबा, जादू दिखाना भी सिखलाओ न।” बाबा खूब हँसते। कहते, “पगली, पहले यह हुनर तो सीख ले। जादू कहाँ भागा जा रहा है!”

“प्रेमा, अरी ओ प्रेमा,” बाबा झुग्गी के दरवाज़े पर टंगा कपड़ा सरकाकर भीतर आए।

प्रेमा ने सूखे आटे से सने हाथ कमीज़ से ही पोंछ लिए। फिर झट से हाँडी को अपनी कोहनी से तिरछी कर संभालकर गिलास में पानी उंडेला। पानी ले बाबा के पास जा पहुँची, “क्यों बाबा, कोई काम मिला क्या?”

“हाँ, हाँ, झटपट तैयार हो जाओ दोनों। आज साढ़े तीन बजे की पार्टी है।” बाबा ने गमछा खूँटी पर टाँगा और खटिया पर बैठ गए।

प्रेमा अपनी छोटी बहन फूलो के पास गई। फूलो कागज पर माँ का चित्र बना रही थी।

“फूलो, अब छोड़ यह सब। चल जल्दी।” प्रेमा ने फूलो का कंधा हिलाया।

“एक मिनट दीदी। बस बालियाँ पहना दूँ माँ के कानों में,” चित्र में बैठी माँ के कानों में फूलो गोल-गोल बालियाँ बनाने में लगी थी।

प्रेमा ने ट्रंक में से अपना लाल चोगा निकाला। चोगे में सामने की तरफ ताश का बड़ा सा इक्का बना था। उसने सलवार कमीज के ऊपर ही उसे चढ़ा लिया। फिर फूलो का भूरा कोट और काला धारीदार पाजामा निकाल कर उससे बोली, “ले, जल्दी से पहन ले।”

फूलो चित्र दोनों हाथों से थामकर प्रेमा के सामने खड़ी हो गई, “देखो दीदी, कैसा बना है?”

प्रेमा ट्रंक में से बाबा का ताम-झाम निकाल कर काठ के बक्से में डाल रही थी। उसने एक नजर चित्र को देखा। आज फूलो ने माँ के बालों में फूल भी लगाया था। प्रेमा बोली, “बहुत अच्छा है फूलों। चल, अब झटपट तैयार हो जा।”

पर फूलों तो चित्र को ही निहारती खड़ी रही, “देखो दीदी, माँ की साड़ी में गुलाबी रंग कितना खिलेगा। बार्डर में हरा रंग भरूँगी। और यह जूड़े का फूल—इसमें भी गुलाबी ही ठीक रहेगा न?” फिर भागकर बाबा के पास गई। बाबा जादूगर वाला लाल कोट पहनकर उसके बटन लगा रहे थे। उनका कोट पकड़कर बोली, “बाब, रंग ला दोगे न?” ओपफ्रोह, रोज-रोज चित्र बनाती है फिर रंगों के लिए जिद करती है। दो पैसे हाथ में तो आने दे, रंग भी ला दूँगा।” बाबा ने सिर पर सादी पगड़ी पहनते हुए कहा।

फूलो मुँह फुलाकर जाने लगी। तभी भालू का बड़ा-सा मुखौटा लिए प्रेमा वहाँ आई। मुखौटा उसके हाथ में देती हुई बोली, “बाबा ने कहा है न कि रंग ला देंगे। चल तैयार हो जा अब।”

तीनों तैयार हो, झुगगी से बाहर निकले। बाबा ने दरवाजे में ताला लगाया। तभी उनकी नज़र प्रेमा के नंगे पैरों की तरफ़ गई। बोले, "क्यों री प्रेमा, कितने दिन से चप्पलें नहीं हैं तेरे पास। याद रखियो, इस बार पैसे मिलते ही पहले चप्पल लाएँगे तेरे लिए।"

"चप्पलें भी आ जाएँगी बाबा, अभी तो चलो," प्रेमा बोली।

पार्टी पास की कॉलोनी में ही थी। बाबा बोले, "चलो, पैदल ही चलते हैं, रिक्शे के चार रुपए बचेंगे।"

"हाँ, हाँ, चलो बाबा," दोनों बहनें एक साथ बोल पड़ीं।

तभी बाबा प्रेमा से बोले, "सड़क बड़ी गरम है? ले, मेरी जूती तू पहन ले।"

"ना बाबा", प्रेमा पैर पटक-पटक कर चलने लगी। बोली, "जूती तुम्हीं पहनो। गरम सड़क से तो सेक होता है पैरों में।" तीनों खिलखिलाते हुए आगे बढ़ चले। जब प्रेमा के पैर जलने लगते, वह बाबा से नज़र बचा कर कभी एड़ी के बल चलती, तो कभी पंजों पर।

घर ढूँढ़ने की ज़रूरत न पड़ी। दूर से दिखाई दे गया।

"देखो दीदी, पूरे बंगले पर लाल सफ़ेद गुब्बारे लगे हैं," फूलो चिल्लाई।

"देख फूलो, हाथी, भालू, जोकर कितनी तरह की तस्वीरें लगी हैं!"

बाबा ने होंठों पर उंगली रख, धीरे से कहा "चुप!" फिर उन्होंने जेब में से एक पुर्जा निकाला और दरवाजे पर खड़े चौकीदार को देते हुए बोले, "भैया, हम जादू वाले हैं।" इससे पहले कि चौकीदार कुछ बोलता, बाग में से गुलाबी फ्रॉक पहने एक लड़की निकल कर आई और ताली बजा-बजाकर कूदने लगी, "माँ, जादूगर आ गए, जादूगर आ गए!" पीछे-पीछे हरी साड़ी में उसकी माँ भी आ गई। चौकीदार ने पुरजा उनके हाथ में देते हुए कहा, "मेम साहब, जादू वाले।"

उन्होंने पुरजे को एक नज़र देखा, फिर बगीचे के एक कोने में रखी मेज़ की तरफ़ इशारा करते हुए कहा, "उस तरफ़ जाइए।"

प्रेमा फूलों का हाथ पकड़े बाबा के पीछे-पीछे उस तरफ़ बढ़ चली। पूरा बगीचा रंग-बिरंगे गुब्बारों से सजा था। प्रेमा ने फूलों को दिखाया, "देख फूलों, झूले!" झूला देखते ही फूलों अपना हाथ छुड़ाकर भागने को हुई "दीदी मैं एक बार झूल आऊँ।"

"हट पगली!" प्रेमा ने उसका हाथ कस के पकड़ लिया और खींचती हुई आगे की ओर गई। उसने देखा, दूर एक तरफ़ खाने की मेज़ सजी थी। दूसरी तरफ़ एक बड़े से पिंजड़े में बहुत सारी रंग-बिरंगी गेंदें भरी थीं। बगीचे के बीचोंबीच मेज़ पर जोकर के आकार का एक केक रखा था। प्रेमा एकटक केक को देखती हुई बढ़ रही थी कि अचानक फूलों ने उसका हाथ दबाया। धीरे से बोली, "देखो दीदी, यहाँ रंगों की दुकान लगी है।" प्रेमा ने देखा, पास की गोल मेज़ पर रंगों के बहुत से डिब्बे रखे थे। तभी गुलाबी फ़्रॉक वाली तनया वहाँ आ पहुँची। उनको रंग देखते हुए देख वह हँसकर बोली, "ये मेरे मित्रों के लिए 'लौटाने वाली भेंट' हैं।"

"ओ हो!" प्रेमा एकदम झेंप गई। फिर फूलों को खींचकर अपनी मेज़ की तरफ़ ले गई। वहाँ पहुँचकर उसने बाबा का सारा सामान मेज़ पर सजा दिया। तभी उसकी नज़र फूलों पर पड़ी। वह अपलक रंगों के डिब्बों को देख रही थी। प्रेमा ने धीरे से कहा, "वहाँ क्या देखती हैं? चल मुखौटा पहन और गेट की तरफ़ जा। देख, मेहमान आने लगे हैं।" फूलों ने एक नज़र प्रेमा की ओर देखा, फिर मुखौटा पहन भालू की तरह घूम-घूमकर सबका मन बहलाने लगी।

तनया उपहार जमा करने में व्यस्त थी। जैसे ही कोई अन्दर प्रवेश करता दिखाई देता, तनया भागकर वहाँ पहुँच जाती और उपहार लेकर एक मेज़ पर रख देती।

अब पार्टी जोर पकड़ने लगी थी। तभी तनया की माँ ने जोर से पूछा, "जादू का खेल कौन देखेगा?"

“हम!”, सब बच्चे एक साथ चिल्लाए।

बाबा ने खेल दिखाना शुरू किया, “आओ! सब बच्चे यहाँ आ जाओ। हम झुमरी तलैया से आए हैं। ऐसा जादू दिखलाएँगे कि चूजा निकलने के बाद अंडा फिर से जुड़ जाएगा।”

“गिली गिली, बाम बाम”, के स्वर के साथ जादू शुरू हुआ। कभी बाबा खाली डिब्बे में से ढेरों रुमाल निकाल देते तो कभी डिब्बे में रखी गेंद को न जाने कहाँ गायब कर देते। कभी कागज़ के एक फूल पर हाथ फेरते तो पूरा रंग-बिरंगा गुलदस्ता निकल आता, तो कभी उनकी पगड़ी में रखा अंडा किसी बच्चे की जेब में पहुँच जाता। सबकी आँखें बाबा पर टिकी थीं। तभी प्रेमा की ओर हाथ बढ़ाकर बाबा बोले, “और अब यह आपको अनोखा खेल दिखाएंगी।”

प्रेमा ने बाबा का हाथ पकड़ा और मेज़ पर चढ़ गई। उसने पहले अपना चोगा फैलाकर सबका अभिवादन किया। फिर मुस्कुराते हुए लाल रंग की गेंद धीरे से सिर पर टिका ली। अब दोनों हाथ फैलाकर सधे हुए पैरों पर गोल-गोल घूमने लगी। कभी उकड़ूँ बैठती तो कभी खड़ी हो जाती। पर गेंद को बड़ी होशियारी से सिर पर टिकाए हुए थी। यह कार्यक्रम चार-पाँच मिनट तक चला। पूरे बगीचे में एकदम सन्नाटा छा गया। फिर उसने गेंद को सामने की ओर लुढ़काया और घुटने से उछालकर हाथ में पकड़ लिया।

बच्चे उछल-उछलकर चिल्लाने लगे “एक बार फिर, एक बार फिर।” प्रेमा की आँखें खुशी से चमक रही थीं। वह झुक-झुककर सबकी तालियाँ स्वीकार कर रही थी। तभी उसकी नज़र फूलों पर पड़ी। वह चुपके से रंगों का एक डिब्बा उठाकर अपने कोट की भीतरी जेब में डाल रही थी। उससे कुछ दूर खड़ी तनया की माँ ने उसे यह करते देख लिया था। पर फूलों इस बात से बेखबर प्रेमा की तरफ़ आ रही थी। तनया की माँ उसके पीछे-पीछे थीं। प्रेमा को अपनी धड़कन जोर-जोर से सुनाई दे रही थी। पूरा बदन पसीने से तर था। क्या करे, क्या न करे, उसकी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा था! अब फूलों

उसके बिलकुल पास आकर खड़ी हो गई थी। तनया की माँ भी उस तक पहुँचने ही वाली थी कि प्रेमा जोर से बोली, "और अब यह आखिरी जादू, तनया के नाम।"

सब बच्चे जोर-जोर से उछलने लगे। प्रेमा बोली, "सब बच्चे, उधर देखिए, रंगों के कितने सारे डिब्बे हैं।" सब उधर देखने लगे। "हम जादू से एक डिब्बा इधर ले आएँगे।" गिली गिली, बाम, बाम। उड़ के आ जा, उड़ के आ जा। भालू राजा की जेब में समा जा।" प्रेमा मेज़ से कूदी और फूलों की जेब से डिब्बा निकाल कर सबको दिखाने लगी।

"वाह! बहुत अच्छे!" तालियों की गड़गड़ाहट से सारा बगीचा गूँज उठा।

प्रेमा ने डिब्बा सामने खड़ी तनया को पकड़ाते हुए कहा, "यह उपहार भालू राजा की तरफ़ से।" उपहार लेकर धन्यवाद कह तनया केक काटने के लिए भागी। भीड़ उसके पीछे हो ली।

प्रेमा ने बाबा की ओर देखा। वह अकबकाए से कभी फूलों को देखते तो कभी प्रेमा को। प्रेमा चुपचाप सारा सामान बक्से में बटोरने लगी। बाबा बक्सा उठाकर खड़े ही हुए थे तभी तनया की माँ आई। प्रेमा के हाथ में बीस का नोट थमाते हुए बोली, "वाह बेटी! बहुत अच्छा करतब दिखाती हो।"

प्रेमा हिचकिचाती हुई बाबा की ओर देखने लगी। बाबा बोले, "ले ले, मेमसाहब खुश होकर दे रहीं हैं।"

प्रेमा ने मुस्कुराकर नोट अपनी जेब में डाल लिया और तीनों बाग से बाहर निकल घर की ओर चल पड़े।

बाहर निकलते ही बाबा ने फूलों को फटकारना शुरू किया, "नालायक कहीं की, दूसरों की चीज़ को हाथ लगाती है। कहाँ से सीखती है ऐसी हरकतें?" रास्ते भर बाबा बड़बड़ाते रहे।

फूलों थी कि सिर झुकाए चुपचाप चल रही थी। सूरज ढलने को था। धुंधलका फैल गया था। प्रेमा को रुक-रुककर फूलों की सिसकी साफ़ सुनाई पड़ रही थी।

प्रेमा के जी में आया फूलो के कन्धे पर हाथ धरकर उसे दिलासा दे। पर बाबा के डर से चुप ही रही।

बाबा फिर बड़बड़ाए, "देख, प्रेमा की तरफ़, चप्पलें नहीं हैं इसको पास। यह भी उठा लाए किसी की चप्पलें? क्या जरूरत है काम करने की!"

फूलो सुबक-सुबक कर रोने लगी और बोली, "अब कभी ऐसा नहीं करूँगी बाबा!"

प्रेमा ने देखा, अब वे सब बाज़ार में से गुज़र रहे हैं। उसने जेब में हाथ डालकर बीस के नोट को महसूस किया और बोली, "एक मिनट बाबा, अभी आई।" वह भागी-भागी एक दुकान में गई और उलटे पैरों लौट भी आई। फूलो अब भी सिर झुकाए सुबक रही थी।

बाबा बोले, "कहाँ चली गई थी प्रेमा?" प्रेमा कुछ न बोली, उसने फूलो के हाथ में रंगों का एक डिब्बा थमा दिया। फूलो कभी डिब्बे को देखती तो कभी अपनी दीदी को। सड़क पर जलते बल्बों की रोशनी में उसके बहते हुए आँसू साफ़ दिखाई दे रहे थे। प्रेमा ने उसके आँसू पोंछ दिए। मुस्कुराकर बोली "चल फूलो, हम अपनी माँ को अपने रंगों से सजाएँगे।" □□

रूपए भी बोलते हैं

सौम्या दावे

"माँ मैं चम्पा और मुन्ना को स्कूल छोड़ने जा रहा हूँ। दोपहर में, इन्हें घर छोड़ने आऊँगा, तो आपकी दवा भी ला दूँगा। चम्पा, अपना बस्ता उठाओ, मैं मुन्ना का बस्ता लेकर चलता हूँ।" बारह साल का प्रताप मुन्ना का बस्ता कन्धे पर उठाकर घर के बाहर निकल गया। पीछे-पीछे, आठ साल की चम्पा बस्ता थामे, और पाँच साल का मुन्ना भागते-कूदते प्रताप के संग हो लिए।

दो वर्ष पहले प्रताप के पिताजी का अचानक देहान्त हो गया था। तब से प्रताप ने निश्चय किया था कि वह हर छोटे-बड़े काम में माँ का हाथ बँटाएगा। माँ ने पास के मसाला केन्द्र में काम करना शुरू कर दिया था और प्रताप पिताजी के मित्र लक्ष्मण चाचा की दुकान पर जाने लगा था। चाचा जी की प्रसाद की दुकान पास के हनुमान मंदिर के सामने थी। प्रताप पैदल ही आता-जाता था। उसने शाम के स्कूल में दाखिला ले लिया। इस तरह काम के साथ पढ़ाई भी चलती रही।

प्रताप को कभी-कभी अपने पिताजी की बहुत याद आती थी। उस समय वह उनका दिया हुआ सिक्कों का संग्रह निकालकर घण्टों उलटता-पलटता रहता था। उसके पिता लाल किले में गाइड का काम करते थे। देश-विदेश के पर्यटकों को मध्यकालीन भारत की सभ्यता और इतिहास की रोचक कहानियाँ सुनाते थे। सिक्के जमा करने का उन्हें बड़ा शौक था। उन्होंने फीस के संग मिले कुछ छोटे-बड़े विदेशी सिक्के व नोट एक बक्से में सहेजकर रखे थे।

समय मिलने पर प्रताप पिताजी से सुनी कहानियाँ चम्पा और मुन्ना को सुनाता था—“पिताजी कहते थे कि ये सिक्के बोलते हैं, बस कोई सुनने वाला होना चाहिए। पुराने जमाने में तो कौड़ियाँ, बकरी, गाय-भैंस भी रुपए-पैसे की तरह माने जाते थे। सोने-चाँदी की मोहरें भी बनती थीं।”

“सोने की मोहरें आज भी होती हैं क्या?” मुन्ना ने पूछा।

“मोहरें तो नहीं, पर कुछ देशों में आज भी सोने-चाँदी के सिक्के बनते हैं।”

चम्पा को बरफ के भालू की छाप वाला सिक्का बहुत पसंद था। प्रताप कनाडा का दो रंग वाला, दो डालर का सिक्का जब चम्पा को दिखाता तो उसके प्रश्नों की बौछार तेज़ हो जाती। “भैया यह भालू बरफ पर फिसलता है? बरफ के बीच खाता क्या है? क्या इसे तैरना आता है? क्या आदमी को पकड़ कर खा जाता है?”

“हाँ, चम्पा, ऐसे भालू पानी में तैर सकते हैं और मछली पकड़ कर खाते हैं।”

“भैया, भैया, अब मुझे मालदीव की कहानी सुनाओ न!”

“मुन्ना मालदीव एक द्वीप समूह है। वहाँ बहुत पहले हमारे देश के कई लोग जा कर बस गए थे। रुपए को वहाँ ‘रुफिया’ कहते हैं। देखो इन सिक्कों के पीछे क्या-क्या बना है—नारियल का पेड़, मछली, कछुए और समुद्री जहाज़। और देखो तो सही, हमारे इस पुराने दस रुपए के नोट पर भी तो कुछ-कुछ ऐसा ही जहाज़ बना है।”

प्रताप के पास पिताजी के संग्रह को बढ़ाने का कोई साधन न था, सो वह पुरानी पत्रिकाओं में से चित्र काट कर जमा करता रहता था। जापान के येन के नोट पर बना फ्यूजीयामा पर्वत, सिंगापुर के डालर पर बना ऑरकिड का फूल, और अमरीकी डालर पर बने वहाँ के पुराने राष्ट्रपतियों के चेहरे—इन सबकी उसे अच्छी पहचान हो गई थी। इतिहास, भूगोल और गणित उसके प्रिय विषय थे।

एक दिन प्रताप दुकान पर बैठा था। दस बजे थे और दुकानें खुल गई थीं। प्रसाद चढ़ाने वालों की भीड़ कम हो गई थी। प्रताप ने चाचा जी से पूछा “आप कहें तो मैं पड़ोस की टी वी की दुकान पर राकेश भैया से एक सवाल पूछकर आऊँ। बस पंद्रह मिनट में लौट आऊँगा।”

“कोई बात नहीं बेटा, मैं दुकान संभाल लूँगा। तुम चले जाओ।”

प्रताप राकेश मोदी की टी वी की दुकान तक पहुँचा ही था कि एक चमचमाती, काली गाड़ी वहाँ आ खड़ी हुई। गाड़ी में से दो आदमी उतरे। एक काला और लम्बे कद का था और दूसरा गेहुँए रंग का मोटा-सा। प्रताप की निगाहें उनके पैरों पर पड़ीं तो उसे कुछ अजीब लगा। मन ही मन सोचा—कितनी अजीब बात है। इतनी चमकती गाड़ी, इतने अच्छे कपड़े, फिर भी पैरों में फटे जूते और रबड़ की चप्पलें।”

वे दोनों आदमी टी वी की दुकान की ओर बढ़े। मोटे आदमी ने कहा “टी वी खरीदना है हमें। सबसे महँगा मॉडल दिखाओ। बढ़िया सामान का शौक है हमें, पुराना माल मत देना।”

सुनकर राकेश भैया खुशी से उछल पड़े। उन्होंने कई मॉडल जल्दी-जल्दी दिखाए। दोनों आदमियों ने एक बड़ा टी वी पसन्द करके गाड़ी में रखने को कहा। लम्बे आदमी ने जेब से एक लिफाफा निकाला। पाँच सौ के नोटों का एक बंडल राकेश भैया के सामने रख दिया। पैसे गिनते-गिनते भैया ने प्रताप से कहा “अरे प्रताप, ज़रा अपनी दुकान से पाँच सौ का छुट्टा तो लाना। आज दस और पचास के नोट कम हैं मेरे पास।”

प्रताप ने पाँच सौ का एक नोट पकड़ा और दौड़ कर लक्ष्मण चाचा के पास आ गया। हाँफते-हाँफते बोला “चाचा, जल्दी से पचास और दस के नोट देना। राकेश भैया की दुकान पर कोई बड़े ग्राहक आए हैं।”

“पर बेटा, मेरे पास तो सिर्फ साढ़े चार सौ रुपए हैं। देखो, क्या राकेश का काम इनसे चल जाएगा? पचास रुपए बाद में दे दूँगा।”

मुट्ठी में नोट दबाकर प्रताप वापस दौड़ा। लेकिन तब तक काली गाड़ी वहाँ से जा चुकी थी। राकेश भैया हँसते-हँसते बोले, “अरे प्रताप, आज तो कमाल ही हो गया। पूरे दो सौ चालीस रुपए ज्यादा देकर चले गए। बोले—‘देर हो रही है। छुट्टे पैसे रहने दो।’ अरे, ऐसे ग्राहक रोज़ आने लगें तो एक साल में लखपती बन जाऊँ।”

प्रताप ने उन्हें साढ़े चार सौ रुपए दिए तो बोले “बाकी पचास रुपए रहने दो। चाचा से कहना मेरी तरफ से बच्चों को मिठाई खिला दें।”

प्रताप सोच में पड़ गया। उसने पूछा “राकेश भैया, उन्हें ऐसी भी क्या जल्दी थी कि दो मिनट नहीं रुक सके? सुबह-सुबह टी वी लेने आ गए, वह भी फटी चप्पल पहनकर! और छुट्टे पैसे भी छोड़ गए।”

“क्या पता प्रताप, शायद काम की जल्दी होगी उन्हें।”

चाचा की दुकान पर पहुँचकर प्रताप ने कहा, “चाचा जी, मुझे वह पाँच सौ का नोट फिर से दिखाएँगे?”

“लो बेटा, देख लो।” चाचा ने नोट आगे बढ़ाया तो प्रताप ने उसे ध्यान से देखा। उसे हाथ से सहलाया और ऊपर-नीचे करके कभी आँखों के पास और कभी दूर करके देखा। कई बार देखा।

प्रताप को ऐसा करते देख चाचा मुस्कुरा पड़े। “अरे बेटा, क्या कर रहे हो? नोट के साथ खिलवाड़ मत करो, फट जाएगा।”

“चाचाजी, मैं इससे बातें कर रहा हूँ। ज़रा रुकिए, यह नोट जाली है।”

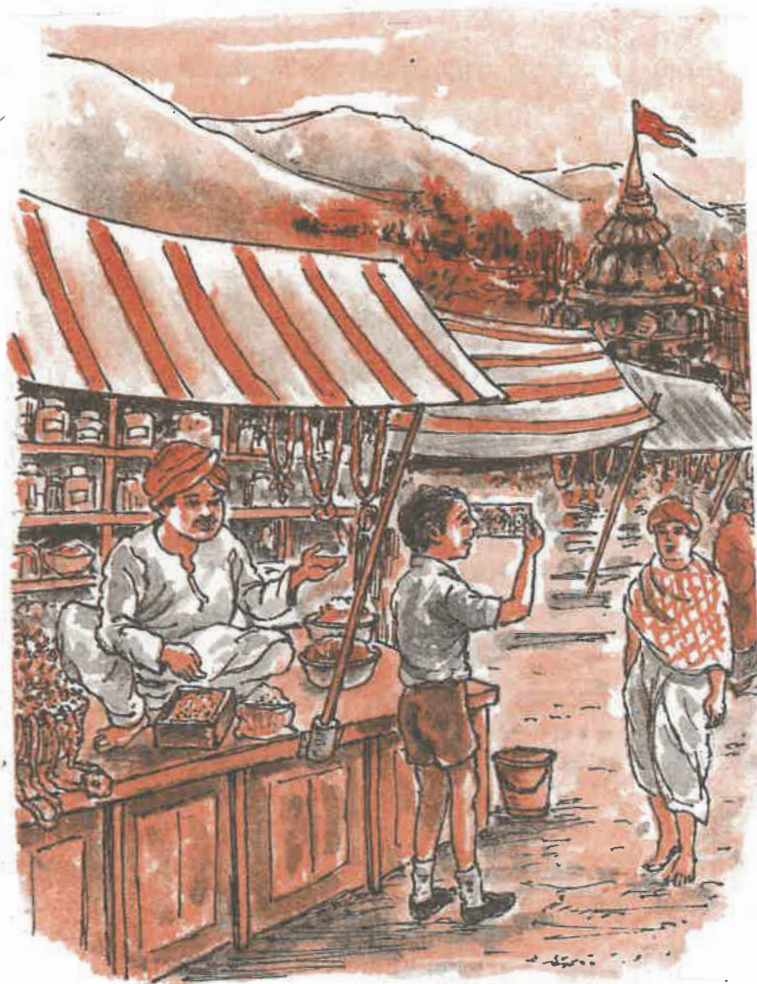
“बेटा, मज़ाक कर रहे हो क्या?”

“नहीं सचमुच, आप चलिए तो सही मेरे साथ। यह नोट जाली है।”

टी वी की दुकान पर जाकर चाचाजी बोले, “राकेश, ज़रा सुनो तो प्रताप क्या कह रहा है।”

“क्या?” राकेश भैया घबरा गए।

प्रताप ने आगे बढ़कर राकेश भैया को अपनी जेब से निकालकर एक अखबार की कटिंग दिखाई। "भैया इसे ध्यान से देखो, इसमें लिखा है कि पाँच सौ के नोट की पहचान कैसे करते हैं। असली नोट में बाईं तरफ़ या तो छोटी-छोटी पाँच काली रेखाएँ होती हैं या एक काली बिन्दी। नोट की छपाई उभरी हुई होती है। सूरज की तरफ़ करके देखने से उसमें एक काला-सा धागा, या अशोक स्तम्भ या



गांधी जी का निशान दिखता है? लेकिन इस नोट में तो सिर्फ चार रेखाएँ हैं और यह एकदम चिकना है। इसमें न तो कोई काला धागा है और न ही कोई निशान।”

चाचा एकदम चौंक पड़े और राकेश भैया के माथे पर पसीना छलक आया। उन्होंने अन्दर से पाँच सौ के नोटों का बंडल निकाला और नोट ध्यान से देखने लगे। दो मिनट बाद दोनों हाथों में अपना सिर थाम कर बोले, “प्रताप ठीक कहता है चाचा। क्या करूँ, मेरा तो हजारों का नुकसान हो गया। मैं उन दोनों को कहाँ से ढूँढ़ कर लाऊँ? वारंटी कार्ड में अपना पता तक नहीं लिखा उन्होंने। कहा टी वी चैक करने के बाद फिर आएँगे।”

“पर भैया, उस गाड़ी का नम्बर मुझे याद है। जल्दी से पुलिस को फोन कीजिए। काली बड़ी सी गाड़ी, डी एल चार... फिर नौ, तीन, दो और सात।”

राकेश भैया ने तुरन्त पुलिस को फोन किया और दो घण्टे बाद ही वे दोनों ठग शहर के एक पुलिस नाके पर पकड़ लिए गए। शाम तक लक्ष्मण चाचा की दुकान पर प्रताप से मिलने वालों की भीड़ जमा हो गई। एक पत्रकार भी पहुँच गया। “अरे, वह लड़का कहाँ है जो नोटों से बातें करता है? सरकार ने उसके लिए इनाम घोषित किया है।”

अगले दिन जब प्रताप का फोटो अखबार में छपा, तो चाचा उसे लड्डू खिलाने घर पहुँच गए। उसकी माँ से बोले “देखा, इसे कहते हैं कि गुरु गुड़ और चेला शक्कर। कल तक इसकी बातों पर मैं हँसा करता था और आज शहर भर में धूम मची है कि रुपए सचमुच बोलते हैं!”

प्रताप झेंपकर माँ के पीछे छिप गया।



पत्र-मित्र

मनोरमा जफ़ा

मैं ने अपनी नई पत्रिका के पन्ने जैसे ही पलटे, पत्र-मित्र वाला पृष्ठ खुल गया। उस पर पहला पता था —

मीना पाटिल

बालिका

आयु 11 वर्ष

शौक—पक्षी अवलोकन, फोटोग्राफी, डाक टिकट इकट्ठा करना, कविता लिखना और बातें करना। द्वारा—श्री शंकर पाटिल, किलारी, ज़िला लाटूर, महाराष्ट्र (भारत)।

बस, मैंने कागज़ निकाला और पत्र लिखने बैठ गई।

प्रिय मीना,

20 सितम्बर 1991

तुम्हारे सारे शौक मेरे शौक से मिलते हैं। मैं तुम्हारी पत्र-मित्र बनना चाहती हूँ। देखो मैं अपने कुत्ते शेरू के साथ ली गई फोटो तुम्हें भेज रही हूँ। मेरा एक बड़ा भाई है। उसका नाम मोहन है।

मेरे एक मामा जी डाक्टर हैं। उनका नाम धीर है। उनकी सगाई हो गई है। मेरी होने वाली मामी जी का नाम सोना है। पिछले बुधवार को एक पार्टी हुई थी। उसमें मेरी सहेलियों ने खूब गाया और नाचा। बड़ा मजा आया। तुम भी अपने परिवार के बारे में लिखना। मैं 19 अक्टूबर को 11 बरस की हो जाऊँगी।

तुम्हारी नई सहेली
निशा जौहरी

मैंने पत्र लिफाफे में डाल टिकट लगाया और पत्र-पेटी में डाल आई। पत्र डालने के बाद ही मैं मीना के पत्रोत्तर की प्रतीक्षा करने लगी। उसका पत्र ठीक 12 दिन बाद मिला। उसने लंबा पत्र लिखा था और एक कविता भी लिखी थी। कविता का शीर्षक था —

मेरी पत्र सहेली

देखा कभी नहीं है तुमको

सुना नहीं कभी है तुमको

फिर भी हैं हम मिलते दोनों

बहनों से लगते हम दोनों

मिलें है अब फिर से हम दोनों

रहेंगे साथ सदा हम दोनों।

मुझे उसकी कविता बड़ी अच्छी लगी।

मीना ने लिखा था कि उसकी नई अध्यापिका का नाम मिस लाल है। "मिस लाल को लड़कियों से विशेष प्रेम है। मुझे भी वह बड़ी अच्छी लगती हैं। हाँ, वे अपने बालों में मोगरे के फूलों का गजरा पहनती हैं।"

तुम्हारी मीना

मीना के दो भाई थे। एक उससे बड़ा और एक उससे छोटा। उसने मुझे एक पुस्तक चिह्न व अपनी फोटो भी भेजी।

मैंने उसको तुरन्त पत्र लिखा। और पत्र में भूटान के दो डाक-टिकट भी रख दिए थे। बड़ी प्रतीक्षा के बाद मीना का पत्र आया। पत्र में वह तारीख डालना भूल गई थी।

प्रिय निशा,

बहुत दिनों के बाद पत्र लिख रही हूँ। तुमको यह जानकर बड़ा दुःख होगा कि 10 दिन पहले मेरी दादी जी का देहान्त हो गया। वह

बिलकुल ठीक थीं और दादा जी के साथ हम लोगों के पास कुछ दिन के लिए आई थीं। एक दिन वह बीमार हो गई। उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और अपनी कलाई से उतारकर अपना सोने का कड़ा मुझे पहना दिया। कुछ बोलीं नहीं। उसी दिन उनकी मृत्यु हो गई।

दादा जी हम लोगों के साथ हैं। ज़रा गुस्सैल अधिक हो गए हैं।

निशा, तुम किलारी ज़रूर आओ। हमारे बाग़ में ख़ूब अँगूर, नारियल, आम के पेड़ हैं और चारों तरफ़ सूरजमुखी के फूलों के खेत हैं। सुनो निशा, अगर तुम्हें सालिम अली की पुस्तक *भारतीय चिड़ियाँ* मिले तो एक मेरे लिए भी ले आना, मैं पैसे दे दूँगी।

ढेर सा प्यार
मीना

मैंने माँ से पैसे लिए और पुस्तकों की दुकान से पुस्तक की दो प्रतियाँ, एक अपने लिए और एक मीना के लिए ले आई। मैंने पत्र भी लिखा।

प्रिय मीना,

मैं सालिम अली की पुस्तक भेज रही हूँ। तुमने पैसे देने की बात क्यों लिखी? यह मेरी तरफ़ से तुम्हें भेंट है। तुम तो मेरी सहेली हो—सबसे प्यारी सहेली। मैं सालिम अली का फ़ोटो भेज रही हूँ, उनकी हथेली पर बया चिड़िया बैठी है। पापा ने बहुत दिन पहले यह तसवीर खींची थी।

मेरे घर के पीछे एक तालाब है। तालाब के किनारे बबूल के दो पेड़ हैं। पेड़ की डालें तालाब पर लटकी हुई हैं। उन डालों पर बया के बहुत से घोंसले लटके हैं। एक रात एक घोंसले से हलकी रोशनी आ रही थी। धीरे मामा जी ने बताया कि मादा बया अपने घोंसले में जब अंडे देती है तो जुगनू पकड़कर रख लेती है। बच्चे बड़े हो जाते हैं तो माँ के साथ उड़ जाते हैं और अपना घोंसला डाल पर ही छोड़ जाते हैं। मैं तुम्हें बया का एक घोंसला भेजूँगी।

सुनो मीना! धीर मामा जी की शादी जनवरी में होगी। तुम्हें ज़रूर आना पड़ेगा। हम लोग खूब मजे करेंगे।

तुम्हारी
निशा

एक हफ्ते के लिए मीना अपने परिवार के साथ दिल्ली आई थी। वे सब हमारे साथ ही रहे। हम दोनों के परिवार खूब घुल-मिल गए। मीना और मैंने छठी कक्षा पास कर ली थी और अब सातवीं कक्षा में



आ गए। गरमी की छुट्टियों में हमने कविताएँ लिखीं। एक दूसरे को पत्र लिखे। भयानक गरमी के बाद फिर जुलाई में स्कूल खुल गए। वर्षा ऋतु आ गई। सब जगह हरियाली छा गई। सितम्बर में मौसम सुहावना हो गया।

एक दिन सुबह मेरी आँख खुली—कैलेंडर पर नज़र गई—आज पहली अक्टूबर है। 19 अक्टूबर को मेरा जन्मदिन है। केवल 18 दिन रह गए। मन में उछालें होने लगीं।

जब मोहन भैया और मैं स्कूल से लौटे, मोहन भैया ने रेडियो चला दिया, उसमें समाचार आ रहे थे।

भूकम्प में 15 हजार लोगों की मृत्यु हुई। किलारी ज़िला शमशान बन गया।

“क्या!” मैं चिल्लाई।

“तुम्हारी सहेली मीना किलारी में ही तो रहती है?” मोहन भैया ने पूछा।

“हाँ।”

“किलारी में भूकम्प....”

उसी समय दरवाज़े पर किसी ने खटखटाया। मोहन भैया ने दौड़कर दरवाज़ा खोला। धीर मामा जी जल्दी में थे—“किलारी में भयंकर भूकम्प आया है। अभी-अभी मुझे दवा आदि लेकर हवाई जहाज़ से किलारी जाना है।” मामा जी, माँ के पास चौके में गए। मैं भी उनके पीछे-पीछे थी।

“मामा जी! किलारी में मेरी दोस्त मीना रहती है।”

“क्या?” वह रुककर बोले, “अच्छा! डायरी में उसका पता लिख दो,” और उन्होंने अपनी छोटी डायरी मुझे पकड़ा दी। डायरी में मैंने मीना का पता लिखा उसके नीचे मीना की तस्वीर चिपका दी और वहाँ एक कागज लगा दिया। मामा जी ने जल्दी-जल्दी खाना खाया और वे अपना सूटकेस उठाकर चले गए।

चलते-चलते मैंने फिर से उन्हें याद दिलाया, "मामा जी! मीना के बारे में फोन कीजिएगा।"

"ज़रूर।"

मामा जी के जाने के बाद मैंने शब्दकोश खोलकर भूकम्प शब्द देखा। भूकम्प-भूचाल का धक्का, पृथ्वी के भीतर कंपन होने से पृथ्वी के ऊपर की सतह का हिलना। इस कंपन से जान-माल को अक्सर बड़ा नुकसान होता है।

शब्दकोश देखने पर भी मैं भूचाल का तनिक भी अंदाज़ा नहीं लगा पाई। अगले दिन मीना का पत्र मिला। 28 सितम्बर 1993 का लिखा पत्र था।

निशा, मेरी परम सहेली,

कल रात अजीब बात हुई। जब हम लोग सो रहे थे मुझे ऐसा लगा किसी ने चारपाई हिलाई। मैं उठकर बैठ गई। मेरी चारपाई से लगी मेरी चाची की लड़की सो रही थी। वह भी झल्लाकर बोली, 'मीना! यह मुझे अच्छा नहीं लगता। सोने दे बाबा।' उसी समय खिड़कियाँ हिलने लगीं। माँ ने आवाज़ दी—'मेज के नीचे छिप जाओ, भूचाल आया है।' हम दोनों मेज के नीचे बैठे रहे। क्या तुमने भूचाल देखा है?

तुम्हारी मीना

मैंने मीना का पत्र कई बार पढ़ा उसने भयंकर भूचाल आने के दो दिन पहले पत्र लिखा था। बार-बार मेरे मन में आ रहा था कि कहीं मीना को कुछ न हुआ हो! फिर नींद आ गई। ऐसा लगा जैसे मीना मुझे आवाज़ दे रही है—'निशा! बचाओ, बचाओ।' मैं उठ बैठी। बाग में गई। कहीं भी मन नहीं लगा। न खाने का मन, न पीने का मन। माँ-पापा और मोहन भैया मुझसे मीठी-मीठी बातें करते पर मेरा मन तो मीना में लगा था। मामा जी की भी कोई ख़बर न मिली। बारह दिन निकल गए। हम लोग खाना खा रहे थे तभी टेलीफ़ोन की

घंटी बजी। माँ ने दौड़कर टेलीफोन उठा लिया। मैंने सुना, "धीर! कैसे हो?...क्या मीना अस्पताल में है? बेचारी।"

मेरा दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। मैं माँ से लगकर खड़ी हो गई।

"मुझे सुनाई नहीं देता। जोर से बोलो," माँ ने कहा। आवाज़ बड़ी धीमी थी, "मीना का हाथ टूट गया है। उसके परिवार के सब लोग खतम हो गए। उसके निकट संबंधी भी किलारी में ही रहते थे, उनमें से भी कोई नहीं बचा..." टेलीफोन कट गया। मैं फूट-फूटकर रो पड़ी।

कुछ देर के बाद फिर घंटी बजी। माँ ने फोन उठा लिया। "जीजी! धीर। किलारी तबाह हो गया। यहाँ तम्बुओं में अनाथालय और अस्पताल खुल गए हैं। उनमें जख्मी बच्चे-बड़े सब पड़े हुए हैं। मीना से मैंने बात की। वह कहती है, 'निशा मेरी सहेली है। मैं उसके पास रहूँगी।' मैंने उससे कुछ नहीं कहा है। क्या वह तुम लोगों के साथ रह सकती है? जल्दी से निर्णय लो। मैं फिर फोन करूँगा। यहाँ लंबी लाइन लगी है।"

माँ ने टेलीफोन रख दिया और कहा, "मीना के परिवार के सब लोग खतम हो गए और वह हम लोगों के साथ रहना चाहती है...क्या किया जाए?"

"हाँ, मीना हमारे साथ ही रहेगी," मैंने झट से कहा।

"निशा!...किसी दूसरे के बच्चे को साथ रखना बड़ा कठिन है," पापा ने माँ की तरफ देखते हुए कहा।

"हम लोग एक और बच्चे को कैसे पालेंगे?" माँ बोली।

"मीना हम लोगों के साथ ही रहेगी। उसका तो कोई भी नहीं रह गया है। वह कहाँ जाए?" कहते-कहते मुझे बड़े जोर से रोना आ गया। "अगर ऐसा ही मेरे साथ हुआ होता तो क्या मीना की माँ मुझे अपने साथ न रखती?" और मैं फिर फूटकर रो पड़ी।

“निशा, चुप रहो।” मोहन भैया ने मुझे डांटा। पापा ने कुछ सोचकर मोहन भैया से पूछा, “मोहन, मीना को साथ रखने के बारे में तुम क्या सोचते हो?”

“साथ रखने के मायने हैं, हमारी हर चीज़ का बँटवारा।”

“तुम बाँट सकोगे?”

मोहन भैया चुप। माँ काँपती हुई आवाज़ में बोलीं, “एक और बच्चे को रखना सरल नहीं है। घर छोटा है और खाना-पीना..., मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता...”

“लेकिन माँ, थोड़ी-सी परेशानी हम लोगों को मार तो नहीं देगी। एक आदमी को जगह तो मिल ही सकती है न पापा?”

“सबकी राय ले लें।” पापा ने चतुराई से कहा।

“मोहन भैया, तुम क्या सोचते हो? क्या एक और मित्र हमारे साथ नहीं रह सकता?” मैंने भैया से पूछा।

मोहन भैया ने एक मिनट सोचा और बोले, “मैं सोचता हूँ...हम सब मिलकर मीना का दुःख बाँट लें।”

मुझे बड़ा संतोष मिला। माँ व पापा अभी तक सोच नहीं पाए थे कि क्या करें। हम सभी से खाना नहीं खाया गया। सब पापा के पीछे-पीछे बड़े कमरे में चले गए। पापा ने टी वी चला दिया। खबरें आ रही थीं। सारा किलारी तहस-नहस हो गया था। मलबे के ढेर लगे थे। दो-चार कुत्ते इधर-उधर घूम रहे थे। अनगिनत तंबू लगे थे। वे सब जख्मी लोगों से भरे थे।

रात के साढ़े ग्यारह बजे टेलीफ़ोन की घंटी फिर बजी। घंटी देर तक बजती रही। माँ ने टेलीफ़ोन उठा लिया। मैं फिर उनसे लगकर खड़ी हो गई। “धीर! जीजी बोल रही हूँ।”

“तुम लोगों ने मीना के बारे में क्या सोचा?”

माँ कुछ नहीं बोलीं। मामा जी ने प्रश्न फिर दोहराया।

मेरा दिल तेजी से धक्-धक् करने लगा।

“मीना को तुम अपने साथ ले आओ।” कहकर माँ ने टेलीफोन नीचे रख दिया। माँ की आवाज बड़ी गंभीर थी।

मामा जी के साथ मीना आ गई। हम सभी ने उसका स्वागत किया। ऐसा नहीं लगा कि वह कहीं बाहर की हो। उसका नाम भी मेरी कक्षा में लिखवा दिया गया। हम साथ स्कूल जाते व साथ ही रहते।

दिसम्बर माह आया। बाग़ गुलदाऊदी के फूलों से भरा था—पीले, सफ़ेद कत्थई। मीना और मैं दीवार पर बैठे साथ-साथ गुनगुना रहे थे—

“हम उड़ेंगे साथ-साथ”

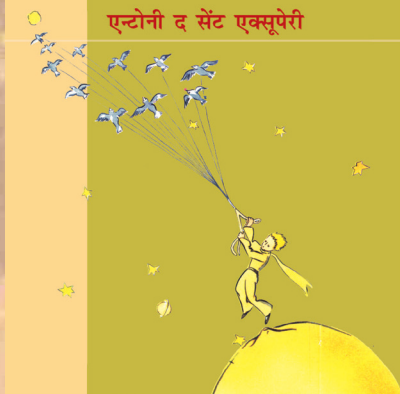
एकाएक मीना हूक मारकर रो पड़ी। मैंने उसके गले में हाथ डाल दिया। वह सुबकते-सुबकते बोली, “निशा, तुम कितनी अच्छी हो। तुम्हारे सब घर वाले कितने भले हैं। तुम सचमुच मेरी पक्की मित्र हो।”

न जानें क्यों उसकी बात सुनकर मेरी आँखों में भी आँसू आ गए।



मन्हा राजकुमार

एन्टोनी द सेंट एक्सपूपेरी



नन्हा राजकुमार

एन्टोनी द सेंट एक्सपूपेरी

₹ 65.00 / पृष्ठ 80

कोड — 2054

ISBN — 81-7450-772-8

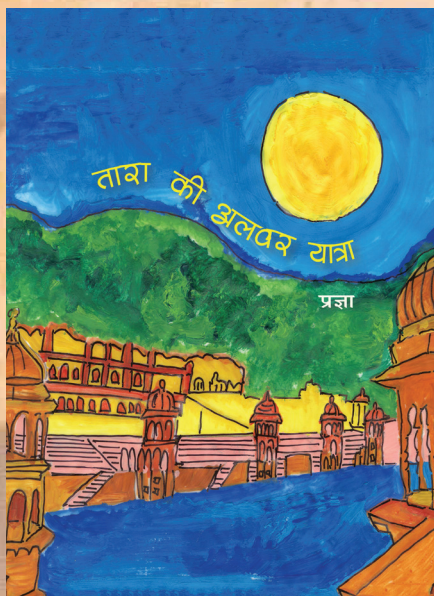
तारा की अलवर यात्रा

प्रज्ञा

₹ 65.00 / पृष्ठ 60

कोड — 2055

ISBN — 978-74-7450-806-5



अधिक जानकारी के लिए कृपया www.ncert.nic.in देखिए अथवा कॉपीराइट पृष्ठ पर दिए गए पत्तों पर व्यापार प्रबंधक से संपर्क करें।

2103

विद्यया ऽ मृतमश्नुते



एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

ISBN 978-81-7450-942-0